स्वतन्त्र भारत में जाति व्यवस्था का बदलता परिदृश्य

डॉ0 शक्ति सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
गनपत सहाय पी0जी0 कोलज, सुलतानपुर (उ0प्र0)

जाति व्यवस्था में जातीय विशिष्टिताओं एवं वर्जनाओं के कारण एक ऐसी समाज व्यवस्था का विकास हुआ जिसमें जातियों के बीच असामनता, न्याय विहिनता, प्रतिबन्धित व्यावसायिक चयन आदि की स्थिति उत्पन्न हो गयी और जाति ने हिन्दू समाज को रूग्ण, निर्जीव व अनैतिक बना दिया। स्वतन्त्रता के पूर्व काल से इन समस्याओं के विरूद्ध वैयक्तिक एवं संगठित रूप से अनेक लोगों द्वारा प्रयास किया गया। इसके उपरान्त स्वतंत्रता और समाजिक न्याय पर आधारित सामाजिक व्यवस्था की स्थापना के संकल्प एवं एतद्सम्बन्धी प्रयासों से जातियों के बीच व्यावसायिक रूढ़िवादिता में व्यापक परिवर्तन उत्पन्न हुआ है। सभी जातियों के लोगो के लिए शिक्षा की सुलभता एवं समाजिक न्याय के कारण रोजगार की सुविधाएं सुलभ हुई है। जाति पर आधारित समाज में व्यवसाय जाति के आधार पर निश्चित होता है व्यक्ति जिस जाति में जन्म लेता है उस जाति का व्यवसाय ही वह अपना सकता है बहुत कुछ इसी वजह से जाति व्यवस्था को संस्थागत शोषण का चरम रूप कहा गया है। परम्परागत रूप से कुछ जातियां अपने भू–स्वामियों की सेवा एवं असम्मानजनक कार्यों को सम्पादित करती रही हैं।

भारतीय समाज में ग्रामीण समाज की विशिष्ट, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक संरचना है। उभरती हुई विभिन्न शक्तियों के फलस्वरूप इस समुदाय की इन विशिष्टिताओं में संरचनात्मक एवं प्रकार्यात्मक रूपान्तरण हो रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात इस रूपान्तरण में तीब्रता आयी है। अनेक माध्यमों से भारतीय समाज के पुननिर्माण का प्रयास किया गया है इससे ग्रामीण समाज में जीवन एवं क्रिया–कलापों में काफी हद तक परिवर्तन आया है। इसीलिए पंचवर्षीय योजनाओं के ड्राफ्ट में यह कहा गया है कि ''अस्थायी कठिनाइयां रूपी अभ्र हमारी दृष्टि को आच्छादित नही कर सकते। हमारे सपनों के भारत निर्माण का सभी अवसर उपलब्ध है इसे हमें दृढ़ता से दोनों हाथों में जकड़ लेना है। एक महान निर्बाध समाजवादी भविष्य हमें पुकार रहा है।''

वर्तमान समय में व्यवसाय के चयन की स्वतंत्रता के कारण सभी जाति वर्ग के लोगों के लिए सभी व्यवसायों के दरवाजे खुले हुए हैं। कोई व्यक्ति किसी भी व्यवसाय को चुनने के लिए स्वतन्त्र है। निर्बाध व्यवसाय चयन के कारण व्यवसाय को सभी क्षेत्रों में सभी जाति वर्गो की सहभागिता सम्भव हुई है। इसका बड़ा ही व्यापक प्रभाव कार्य एवं समाज दोनों पर देखनें को मिलता है। श्रमजीवी जातियों के लोग जिन्होंने ने अपने परम्परागत व्यवसाय का परित्याग कर दिया है, वे अब अपने ही खेत की जुताई नहीं करते है क्योंकि वे इसे असम्मानजनक मानते हैं और यह कथ्य विशेषतः उस दशा में और सत्य होता है जब उनका नया व्यवसाय उच्च प्रस्थिति वाला होता है।[2]

संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (छ) में कोई वृत्ति, उपजीविका या कारोबार की आजादी दी गयी है। अम्बेडकर[3] ने आर्थिक संरचना का जो स्वरूप निर्धारित किया था उसे उन्होंने तीन तत्वो पर आधारित बताया था– (1) श्रम की स्वतंत्रता (2) राज्य समाजवाद और (3) बुद्ध का साम्यवाद।

उनका कहना था कि किसी व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरूद्ध काम करने पर मजबूर करना उसे गुलाम बनाने से कम नहीं है। भारतीय समाज काफी लम्बे समय तक श्रम की आजादी के अभाव में झेलता रहा, परन्तु स्वतंत्र भारत में श्रम की आजादी ने समाज के स्वरूप एवं प्रकार्य दोनों को परिवर्तित करने में काफी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया।

आधुनिकीकरण एवं वैश्वीकरण की ऑधी में पीड़ादायक, चिन्ताजनक परम्परागत मान्यतायें दम तोड़ती नजर आ रही हैं। इन प्रक्रियाओं ने व्यक्ति के जीवन में स्वाभाविक रूप से गम्भीर सामाजिक परिवर्तन उत्पन्न किये हैं। समाजिक जीवन की परम्परागत मान्यताएं समाप्त हो रही है। व्यावसायिक एकाधिकार समाप्ति की ओर है। अध्ययनकर्ताओं ने ग्रामीण क्षेत्र में जाति की स्थिति के अध्ययन से यह निष्कर्ष दिया है कि निम्न जातियां ही नही बड़े पैमाने पर ब्राह्मणों ने अपने व्यवसाय का परिवर्तन किया है। वास्तव में लोगों की नूतन सामाजिक आकांक्षाओं के आविर्भाव की तीव्रता इतनी अधिक है कि किसी उपयुक्त संस्थागत यंत्रावली की प्रतिक्षा नहीं कर सकते। भारत में जातीय नृजातीय और भाषायी समूहों जैसे परम्परागत संस्थाओं ने नये मूल्यों, आकांक्षाओं और कार्य क्षेत्रों के संधियोजना के लिए स्वाभाविक पृष्ठभूमि प्रदान किया है।[4] अर्थात वर्तमान समय में आधुनिकीकरण, औद्योगीकरण, नगरीकरण और वैश्वीकरण जैसे तमाम नूतन दशाओं की अपनी प्रायः सभी जाति वर्गो के लोगों में दिखायी देती है।

स्वतंत्रा प्राप्ति के पश्चात् उत्पादन एवं विक्रय की नई दशाओं ने जातियों के व्यवसायों को परिवर्तित करने में योगदान किया है। वेंकटरैमय्या के अनुसार स्वातंत्रयोत्तर काल में उत्पन्न हुए बाजार अर्थव्यवस्था एवं सामाजिक–आर्थिक परिवर्तनों के कारण जातियों के व्यवसाय परिवर्तित हुए हैं। जन्म, और अनुष्ठानात्मक श्रेष्ठता पर आधारित पुस्तक जाति के परातन संस्तरण का स्थान नये संस्तरण ने ले लिया है।[5]

वर्तमान समय में ग्रामीण जीवन में परिवर्तन हो रहा है क्योकि आज लोग अपने कार्यो और विचारों में तार्किक है। तर्क की यह शक्ति स्वतंत्र भारत में इस दिशा में नियोजक की नीति से भी प्रभावित है। योजना की महत्ता को स्पष्ट करते हुए कार्ल मैनहीम ने लिखा है कि वर्तमान समय की समस्या को समझने एवं उनका समाधान ढूढ़ने के लिए नियोजन आवश्यक है। उनका मानना है कि 'हमारा कार्य नियोजन के द्वारा एक सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना है किन्तु यह योजना विशेष प्रकार की होनी चाहिए। योजना ऐसी होनी चाहिए जिससे लोगों को आजादी मिले परन्तु वह प्रजातांत्रिक नियन्त्रणों से युक्त हो, न कि निबन्धात्मक हो जो उद्योगों एवं श्रम संगठनों जैसी एकाधिकार समूहों का पक्षधर हो। आगे इन्होंने लिखा है कि योजना समृद्धि के लिए हो जिससे पूर्ण रोजगार की व्यवस्था हो सके तथा संसाधनों का दोहन हो सके, पूर्ण रूपेण बराबरी के बजाय ऐसे सामाजिक न्याय की योजना होनी चाहिए जिससे प्रस्थिति एवं प्रतिफल का निर्धारण विशेषाधिकार के स्थान पर औचित्यपूर्ण बराबरी के आधार पर हो, वर्ग विहीन समाज के बजाय सम्पन्नता एवं विपन्नता को दूर करने की योजना होना चाहिए, अधोनति के बिना सांस्कृतिक स्तर को बनाये रखने की योजना होनी चाहिए, परम्परा के बहुमूल्य तत्वों की उपेक्षा किये बिना एक नियोजित परिवर्तन की योजना होनी चाहिए, योजना ऐसी होनी चाहिए जिससे सामाजिक नियन्त्रण के साधनों के समन्वय द्वारा जनसमूह के लिए संकट का विरोध हो सके परन्तु सामूहिकता के मानदण्डों से परिभाषित संस्थागत एवं नैतिक अपकर्ष के मामले में ही हस्तक्षेप होना चाहिए, योजना ऐसी होनी चाहिए जिससे शक्ति के केन्द्रीकरण एवं विस्तार के बीच संतुलन हो, व्यक्तित्व के विकास को प्रोत्साहिक करने के लिए क्रामिक परिवर्तन की योजना होनी चाहिए।[6]

निःसन्देह कार्ल मैनहीम की योजना सम्बन्धी महत्वपूर्ण विचारधारा का अंगीकरण एक आदर्श, विभेदरहित, न्यायप्रिय समाज के निर्माण की चाबी सिद्ध हो सकती है। भारतीय समाज की समस्याओं को दूर करके नये समाज की संकल्पना के साथ योजनाबद्ध तरीके से प्रयास भी हुए हैं और उसके प्रतिफल भी

परिलक्षित हुए हैं। सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था में काफी परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहे हैं। विशेषतः व्यवसायों के मामले में काफी परिवर्तन हुआ है। समाज में जो सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखायी देता है वह जाति व व्यवसाय के सम्बन्धों में निरन्तर ह्रसोन्मुखता का है। यह सच है कि जहां कुछ लोग जाति सम्बन्धित व्यवसाय से जुड़े हैं वही अधिकतम ने दूसरे व्यवसायों को चुना है। कुछ जाति आधारित व्यवसाय जो अपवित्र या कलुषित करने वाली नहीं है उसे दूसरी जातियों के लोग भी स्वीकार कर रहे है। कुल मिलाकर इकाई और व्यवस्था दोनों ही स्तरों पर जातीय प्रतिबन्ध शिथिल हो गये है।[7]

प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल की लम्बी अवधि तक जाति–प्रथा के अनुसार निर्धारित ढंग से लोग जीवन यापन करते रहे हैं । किन्तु वर्तमान समय में अनेक ऐसी दशाएं उत्पन्न हुई है जिनके परिणामस्वरूप स्थिति में परिवर्तन हुआ है। जातीय कठोरतायें में शिथिल हुई है। सामाजिक आन्दोलनों, शिक्षा, औद्योगिकरण, नगरीकरण, वैश्वीकरण आदि अनेक दशाओं के कारण जाति जैसी व्यवस्था का लगभग सभी पक्ष दुर्बल हो गया। व्यक्ति की स्वायत्ता बढ़ी जैसी कि कुप्पुस्वामी ने लिखा है। ''उदारवाद और तर्कवाद का एक महत्वपूर्ण पतिफल समाज में व्यक्ति की स्वायत्तता के सिद्धान्त का स्थापित होना है।[8]

वर्तमान समय में समस्त जाति वर्गो के लोगों को स्वेच्छानुसार व्यवसाय अपनाने, सामाजिक स्थिति को सुधारने एवं राजनैतिक गतिविधियों में निर्बाधरूप से अवसर प्राप्त हुआ है, सभी ने इस दिशा में प्रयत्न भी किया है। और वांछित परिणाम भी मिल रहे है। इस प्रकार वर्तमान समय में प्रायः सभी जाति वर्गो के लोग उपलब्धि की ओर उन्मुख हुए हैं। श्रीनिवास ने संस्कृतिकरण की व्याख्या के क्रम में यह बताया है कि निम्न जाति के लोग उच्च जातियों के रीति–रिवाज, खान–पान एवं कर्मकाण्डों को अपनाकर स्वयं की श्रेणी को उच्चता की ओर बदलने का प्रयास करते रहे है। अर्थात निम्न से उच्च की ओर जाने की यह प्रक्रिया ऊर्ध्व गतिशीलता का द्योतक है।

इस प्रकार स्पष्टतः भारतीय समाज में अनेक कारकों के प्रभाव के कारण समाजिक आर्थिक, राजनीतिक दशायें निरन्तर परिवर्तन की ओर अग्रसर हैं। परम्परागत संकीर्णताओं एवं सामाजिक अन्य व्यावसायिक प्रतिबन्धों एवं राजनीतिक अनुपयक्ताओं को पीछे छोड़ते हुए विकासोन्मुखता की ओर अग्रसर हैं।

सन्दर्भ – ग्रन्थ

1. सिंह, आर0 जी0, 1986, भारतीय दलितों की समस्यायें एव उनका समाधान, भोपाल मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृ0 37।
2. हालपर्न जे0एम0 1969, द चेंजिंग विलेज कम्प्यूनिटी, न्यू देहली, प्रोन्टीस हाल आफ इण्डिया प्रा0लि0 पृ0 71।
3. बाली एल0आर0, 1974, अम्बेडकरिज्म–नागपुर वी0एम0बी0 प्रकाशन, पृ0 72।
4. सिंह, प्रो0 योगेन्द्र, 1977, मार्डनाइजेशन आफ इण्डियन ट्रेडीशन : फरीदाबाद थामसन प्रेस, प्र0169।
5. के0एन0 वेंकटरैयप्पा, पृ0सं0–237।
6 कार्ल मैनहीम, 1950, फ्रीडम पावर एण्ड डेमोक्रेटिक प्लानिंग : इग्लैण्ड – आक्सफोर्ड, यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ0 29।
7. योगेश अटल, 2006, चेजिंग इण्डियन सोसाइटी, न्यू देलही, पृ0 248।
8. वी0कुप्पूस्वामी, 1975, सोसल चेंज इन इण्डिया, दिल्ली, विकास पब्लिशिंग हाउस, पृ0 363।

बिहार में महिलाओं की सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति : एक अध्ययन

डॉ0 चित्रलेखा कुमारी
ग्राम–अमेठ पोस्ट–भिटी
जिला–कैमूर, बिहार

भारतीय चेतना का आलोक स्तम्भ 'असतों माँ सदगमय तमसो मा ज्योर्तिगमय मृत्यौमाडमृतम्गमय' की रचना बिहार की बेटी मैत्रेयी ने जिस धरती पर की वह विश्व का प्रथम गणतंत्र, गौतम बुद्ध की ज्ञानस्थली, अजातशत्रु, चाणक्य मौर्य, चन्द्रगुप्त, सम्राट अशोक, शेरशाह, वीर कुँवर सिंह, महात्मा गाँधी, जयप्रकाश नारायण की कर्मभूमि, ज्ञान का प्राचीनतम महातीर्थ नालंदा विश्वविद्यालय के रूप में विश्वविख्यात है। बिहार का इतिहास गौरवशाली रहा है। यह भारत के भाग्य निर्धारण का केन्द्र हुआ करता था। भौगोलिक स्तर पर जिस भू–भाग को आज हम बिहार कहते हैं, वह भारतीय इतिहास के ज्ञात–अज्ञात काल से ही समूचे भारत के भाग्यनिर्धारण का केन्द्र रहा है साथ ही साथ सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक भूगोल के निर्धारण का भी केन्द्र रहा है।

प्राचीन काल भारतीय महिलाओं का स्वर्णिम काल रहा है। पुरूष प्रधान व्यवस्था के बावजूद महिलाओं का समाज में सम्मान था, प्रतिष्ठा थी, उन्हें आगे बढ़ने की पूर्णस्वतंत्रता थी। भारतीय नारी के सम्बन्ध में अपने विचार रखते हुए मानवों के आदि प्रजापति मनु ने मनुस्मृति में कहा है कि–

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।

अपने अध्यात्म ज्ञान, प्रखर पांडित्य और अगाध प्रतिभा से वे समाज को यह बता सकीं कि वे पुरूषों से किसी प्रकार कम नही हैं। इस देश के मनीषियों ने शताब्दियों पूर्व ब्रह्म की कल्पना अर्द्धनारीश्वर के रूप में करके नारी का सम्मान किया। नारी और पुरूष को जीवन के रथ के दो पहियों की संज्ञा से विभूषित किया था। स्त्री की प्रसन्नता की सम्पूर्ण परिवार की प्रसन्नता, शांति और समृद्धि है, के सिद्धांतों की प्रतिष्ठा की थी। उसकी महिमा का मुक्त कण्ठ से यशोगान किया गया था। नारी ने ही पुरूष के साथ सहधर्मिणी का रूप निभाया है। इसके लिए अच्छा उदाहरण आचार्य मंडन मिश्र की पत्नी शारदा देवी है, जिन्होंने शंकराचार्य से शास्त्रार्थ किया था। इसमें न केवल उन्होंने पति की सहधर्मिता निभाई थी बल्कि ज्ञान के क्षेत्र में भी अपनी योग्यता प्रदर्शित की थी। इस प्रकार से मैत्रेयी, गार्गी, सीता, अनसूया, सावित्री, द्रोपदी आदि विदुषी महिलाओं के नामों से हमारा इतिहास भरा हुआ है। मध्यकालीन भारत में रजिया सुल्तान, अहिल्या बाई, रानी दुर्गावती, रानी लक्ष्मीबाई ने राजनीतिक प्रशासनिक और सामाजिक क्षेत्र में अति महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आधुनिक काल में आजादी के आंदोलन में बिहार की प्रमुख महिलाओं मं राज किशोरी देवी, प्रभावती देवी, विन्ध्यवासिनी देवी एवं रामप्यारी देवी हैं। आजाद भारत में राजनीति के क्षेत्र में सरोजनी नायडू, विजय लक्ष्मी पंडित, सुचेता कृपलानी इंदिरागांधी, जयललिता, राबड़ी देवी, मीरा कुमार, मायावती, सोनिया गांधी एवं ममता बनजी का महत्वपूर्ण स्थान है।

स्त्री का मानव की दृष्टि में ही नहीं वरन समाज और राष्ट्र निर्माण में भी महत्वूपर्ण स्थान है। देश का समग्र विकास महिलाओं की भागीदारी के बिना संभव नहीं है। महिलाएं राष्ट्रीय विकास की मुख्यधारा में अपनी सक्रिय भूमिका निभायेंगी तभी राष्ट्र का सर्वांगीण विकास संभव है। अन्तर्विरोधी रूपों और धारणाओं

को लेकर भारतीय नारी का सामाजिक रूप निर्मित और विकसित हुआ है। वह कभी प्रकृति, शक्ति, काली है तो कभी पढ़ी लिखी विदुषी है और कभी अत्यन्त साधारण गांव की सीधी–सीधी मैली कुचैली अनपढ़ नारी है। अति मानवीय रूप में उसे पूजा गया किन्तु मानवीय रूप में जननी, भगिनी, पत्नी, प्रेयसी आदि सम्बन्धों का निर्वहन करते हुए अबला, बेबस और उपेक्षित है। प्राचीन काल महिलाओं का स्वर्ण युग रहा है परंतु मध्यकाल में महिलाओं की स्थिति उतनी सुखद नहीं रही। उनकी प्रगति अवरूद्ध रही। ब्रिटिश काल में यद्यपि महिलाओं में सामाजिक चेतना आयी लेकिन अधिक प्रगति नहीं हुई क्योंकि ब्रिटिश सरकार ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। महिला शिक्षा लगभग नगण्य रही।

दुनिया में ऐसा कोई भी देश नहीं है जहाँ महिलाओं को हाशिए पर रखकर आर्थिक विकास संभव हुआ हो। महिलाओं को विकास की मुख्यधारा से जोड़ें बिना किसी समाज, राज्य एवं देश के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती हैं। आज अनवरत संघर्ष के बूते देश में महिलाओं ने सता के सर्वोच्च शिखर तक चढ़कर हर क्षेत्र में स्वयं को पुरूषों के समकक्ष साबित किया है। जहाँ शहरों में महिलाएं वृद्धि के हर क्षेत्र में स्वयं को पुरूषों के बराबर साबित कर रही हैं वही ग्रामीण क्षेत्रों में भी महिलाओं में साक्षरता बढ़ी है और वे स्वरोजगार के जरिए आत्मनिर्भरता की ओर अपने कदम बढ़ा रही है। वे गांवों में पंचायत स्तर पर भी नेतृत्व प्रदान कर रही है। महिलाओं की आर्थिक स्थिति सुधरी है। वे नये जोश के साथ रसोईघर की दहलीज लाँघ कर सामाजिक दायित्व निभाती दिखाई पड़ रही है। अपने स्वपनों को साकार करने के लिए महिलाओं ने गरीबी और सामाजिक बंधनों को भी तोड़ा है ये सुधार जाहिर तौर पर महिलाओं में चेतना के प्रतीक है।

बिहार प्राचीन काल से ही महिलाओं का पक्षधर रहा है। इसके अनेकों उदाहरण मौजूद है। मध्यकाल में इनकी स्थिति अच्छी नहीं रही पंरतु आधुनिक काल में महिलाओं की स्थिति में सुधार आना शुरू हो गया जो भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेकर बिहार की महिलाओं में विन्ध्यवासिनी देवी, प्रभावती देवी, राजकिशोरी देवी, रामप्यारी देवी आदि क्रातिकारी महिलाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए बिहार के निर्माण में काफी योगदान दिया। माननीय मुख्यमंत्री श्री नीतिश कुमार ने महिलाओं को राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक रूप से सशक्त बनाने के लिए विभिन्न कठोर कदम उठाये हैं जिसमें प्रमुख रूप से पंचायतों में महिलाओं का 50 प्रतिशत आरक्षण देकर विश्वकीर्ति मान स्थापित किया है। साथ ही साथ शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षक के रूप में 50 प्रतिशत आरक्षण देकर महिलाओं को आर्थिक एवं सामाजिक रूप से सशक्त किया है।

शिक्षक के रूप में महिलाएँ जव घर से बाहर विद्यालयों में पहुँची तो बिहार में बहुत भारतीय सामाजिक परिवर्तन हुआ जिसका सबसे बड़ा प्रभाव शिक्षा पर पड़ा परिणाम स्वरूप देखा देखी लोग अ पने घर की बहू बेटियों को पुनः पढ़ाना शुरू किये। जो बहू बेटियों पढ़ाई छोड़ चुकी थी उन्होंने कॉलेजों में पुनः नामांकन कराया जिसे बिहार के कॉलेजों के नामांकन में आयी अचानक वृद्धि से देखा जा सकता है। शिक्षा पाने की होड़ लग गयी परिणामस्वरूप जब 2011 में टी0ई0टी0 एवं अन्य शिक्षक की परीक्षा फार्म निकले तो परीक्षार्थियों की वाढ़ सी आ गयी जिसे महापरीक्षा भी कहा गया।

पंचायती राज के अन्तर्गत 50 प्रतिशत महिलाओं को राजनीतिक क्षेत्र में आरक्षण देकर माननीय मुख्यमंत्री श्री नीतिश कुमार ने बिहार में एक महत्वपूर्ण कार्य किया जो कहीं भी अन्य प्रदेशों में नहीं है। आज इसका अनुकरण अन्य प्रदेश करने में लगे हैं। एक ओर दुखद बात है कि भारतीय संसद एवं राज्यों की विधान सभाओं में 33 प्रतिशत महिला आरक्षण का मामला इतने दिनों से लम्बित है, नहीं पास हो सका,

तो दूसरी ओर श्री नीतीश कुमार जीने 33 प्रतिशत की जगह 50 प्रतिशत आरक्षण महिलाओं को देकर महिला पक्षपाती होने का श्रेय प्राप्त कर लिये जो बिहार के लिए सुखद है।

महिला सशक्तिकरण में बिहार के माननीय मुख्यमंत्री श्री नीतीश कुमार का योगदान काफी सराहनीय है। इन्होंने पंचायतों में 50 प्रतिशत पद महिलाओं के लिए आरक्षित कर दिये जिसके परिणामस्वरूप आज दलित समाज की बहुत सी महिलाएं अध्यक्ष, जिला परिषद, सदस्य प्रमुख, मुखिया, वार्ड सदस्य, सरपंच एवं पंच बनी हैं जो कभी सोची भी नहीं थी। महिलाओं के राजनीति सशक्तिकरण के रूप में माननीय मुख्यमंत्री नीतीश कुमार का यह कार्य ऐतिहासिक है।

बिहार में पंचायती राज के अन्तर्गत 50 प्रतिशत महिलाओं को दिया गया आरक्षण का ब्योरा निम्न प्रकार से है–

तालिका–1

पदनाम	कुल पद	सामान्य महिला	अ0जा0 महिला	अ0ज0जा0 महिला	पछड़ा वर्ग महिला
सदपरिषद	1162	381	85	2	00
ुखिया	8463	2611	561	17	595
ज्ञरपंच	8463	2631	654	49	97
ग्राम पंचायत सदस्य	115876	36423	9475	305	057
ग्राम पंच	115876	36501	9033	534	380
पंचायत समिति सदस्य	पलब्ध नहीं	पलब्ध नहीं	उपलब्ध नहीं	उपलब्ध नहीं	लब्ध नहीं

साभार–प्रभात खबर पटना दिनांक 18 एवं 19 दिसम्बर 2010, 17 जनवरी एवं 20 जनवरी 2011 के अंक

तालिका–2

वर्ष 2010 महिला विधायकों की वर्तमान बिहार विधान सभा में संख्या दलीय आधार पर निम्न प्रकार से है–

2010 बिहार विधान सभा में कुल सदस्य–243

महिलाओं सदस्यों की संख्या–25

क्र.सं.	राजनीतिक दल	महिला विधायकों की संख्या
1.	जदयू	12
2.	भाजपा	04
3.	कांग्रेस	02
4.	लोजपा	01

5.	राजद	04
6.	बसपा	01
7.	निर्दलीय	01

साभार–बिहार यात्रा हिन्दुस्तान पटना 8 मार्च 2010, पेज 10

तालिका–3

बिहार विधानसभा में महिलाओं की भागीदारी

वर्ष	कुल सीट	कुल महिला प्रत्याशी	निर्वाचित महिला	मुस्लिम महिला	जीत का प्रतिशत
1952	330	19	13	0	3.92
1957	318	41	34	1	10.69
1962	318	46	25	1	7.86
967	318	29	10	0	3.10
1969	318	20	04	0	.25
972	324	45	12	2	4.01
1977	324	96	13	0	.01
980	324	72	13	1	4.69
1985	324	104	15	1	.01
1990	24	47	13	0	.10
1995	324	64	12	0	.70
000	243	189	15	0	.17
005 फरवरी	243	96	25	0	.87
2005 (अक्टु0+नव0)	43	36	5	0	0.28
010	243	उपलब्ध नहीं	4	2	पलब्ध नहीं

साभार–प्रभात खबर पटना 27 नवम्बर, 2010, पेज 2

तालिका–4

लोकसभा में महिलाओं की संख्या निम्न प्रकार से है–

र्ष	हिला उम्मीदवार	महिला निर्वाचित	दर प्रतिशत
957	5	2	8.9
1962	6	1	7
967	67	29	43

1971	86	1	4.4
1977	0	19	7.1
980	43	8	9.6
1984	62	42	5.9
989	98	9	14.7
991	26	7	11.4
996	99	0	6.7
998	274	3	5.7
999	84	9	7.3
004	5	5	2.7
009	556	9	10.6

साभार–प्रभात खबर पटना 10 जनवरी 2011 पेज 10

तालिका–5

लोकसभा में बिहार से महिला जनप्रतिनिधियों की संख्या निम्न प्रकार से है–

क्र.सं.	वर्ष	हिला प्रत्याशी	निर्वाचित महिला
1	952	03	02
2	957	07	5
3	1967	6	02
4	971	17	3
5	977	08	00
6	980	19	05
7	984	6	09
8	989	17	2
9	991	30	2
10	996	19	03
11	998	22	4
12	999	20	5
13	004	2	3
14	009	18	04

साभार–बिहार : राज और समाज, श्री कांत, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

इस प्रकार हम देखते हैं कि बिहार में राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं में जागरूकता आई हैं। उदाहरण के तौर पर बिहार विधानसभा 2010 को ही लेकर देखें तो महिलाओं ने पुरूषों के मुकाबले अधिक वोट डाले। संख्या में पुरूषों से कम होने के बावजूद महिलाओं का वोट प्रतिशत ज्यादा है। इस चुनाव में कुल जहाँ 2,90,26,367 वोट (52.65 प्रतिशत) पड़े जिसमें पुरूष ने 1,38,51,951 वोट (51.11 प्रतिशत) डाले तो महिलाओं में 1,51,74,416 वोट (54.44 प्रतिशत) डाले। बिहार जैसे पिछड़े प्रदेश में महिलाओं के वोट टर्न

आउट का बढ़ जाना इनके जागरूकता की निशानी है। वोट का यह छलांग परम्परागत वर्जनाओं से मुक्ति की ओर छलांग की तरह है। यह सामाजिक सशक्तिकरण की दशा में महत्वपूर्ण कदम है। आरक्षण में आरक्षण लागू कर माननीय मुख्यमंत्री जी ने अपने सूत्रवाक्य न्याय के साथ विकास की प्रतिबद्धता को अक्षरशः लागू की है क्योंकि संसद और विधानसभाओं में 33 प्रतिशत महिला आरक्षण आरक्षण में आरक्षण के कारण ही विवादित हो गया है जो इतने वर्षों के बावजूद भी लागू नहीं हो पाया।

बिहार की महिलाएं राजनीति के क्षेत्र में अपनी पहचान बनाने में कायम हो चुकी हैं। बिहार में सर्वप्रथम महिला कैबिनेट मंत्री स्व0 सुमित्रा देवी बनी। बिहार की पहली महिला मुख्यमंत्री श्रीमती राबड़ी देवी ने बनकर महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा दिया। इसी कड़ी को बढ़ाते हुवे श्रीमती मीरा कुमार (सासाराम लोकसभा क्षेत्र) लोकसभा अध्यक्ष श्रीमती कांति सिंह ने केन्द्रीय मंत्री बनकर और मजबूत किया है। आज बिहार में महिलाएँ, अध्यक्ष जिला परिषद, प्रमुख मुखिया, सरपंच, पंच आदि बनक राज काज चला रही है। माननीय मुख्यमंत्री श्री नीतीश कुमार के पूर्व मंत्रिमण्डल में प्रो0 सुखदा पाण्डेय (कला–संस्कृति एवं युवामंत्री), डॉ0 रेणु कुमारी कुशवाहा (आपदा प्रबंधन एवं उद्योग मंत्री) एवं परवीन अमानुल्लाह (बाल विकास विभाग) ने महत्वपूर्ण विभागों का काम संभालकर नारी सशक्तता का परिचय दिया है। आज बिहार में सवा लाख महिलाएँ पंचायत प्रतिनिधि, नगर निकायों में हजारों एवं चालीस हजार महिलाएँ शिक्षिका बनकर अपनी सशक्तता का एहसास करा दिया है। फिर भी अभी बिहार सहित पूरे देश में महिलाओं को और सशक्त बनाने की जरूरत है। यह सही है कि जितना है उसमें बिहार आगे है फिर भी अभी बहुत कुछ करना बाकी है–

न थक कर बैठ कि तेरी उड़ान बाकी है।

जमीन खत्म हुई है आसमां बाकी है।।

संदर्भ सूचीः–

1. बिहार राज और समाज, श्री कांत, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. जातियों का राजनीतिकरण, कमल नयन चौबे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. बिहार यात्रा–2 हिन्दुस्तान पटना 09 मार्च 2010, पेज 17
4. टूटी दासता, प्रभात खबर पटना 11 जुलाई 2010, पेज 15
5. हिन्दुस्तान, पटना 3 दिसम्बर 2010, पेज 10
6. हिन्दुस्तान, पटना 25 दिसम्बर 2010, पेज 10
7. धन्य धरा बिहार की, प्रत्युष नव बिहार पटना दिनांक 02–04 एवं 05 अक्टूबर 2011 के अंक, पेज 12
8. मैत्रेयी, नरेशवाला मेहता, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार।

निराला के साहित्य का भाषा सौष्ठव

डॉ0 संजय कुमार सिंह,
असिस्टेंट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग
भूपेश गुप्त महाविद्यालय, भभुआ
कैमूर, बिहार

निराला का विराट व्यक्तित्व उनकी रचनाओं में देदीप्यमान है। उनका अद्वैतवाद, रहस्यवाद किसी रूढ़ी को पोषित नहीं करती बल्कि उसे वैज्ञानिक, युक्तिसंगत मोड़ देती है। निराला जी सर्वतोन्मुखी प्रतिभा के धनी कवि है। किसी एक पाश में बंधे रहना उनकी प्रतिभा को गंवारा नहीं है। यही उनका मौलिकता है। कहीं वे रहस्यवादी प्रतीत होते हैं तो कहीं छायावादी और प्रयोगवादी। उनकी रचनाएं कभी आदर्श का प्रणयन करती है तो कभी यथार्थ का, लेकिन निराला जी का यह सभी वाद केवल उनका फक्कड़पन है। वे उस मस्त औघड़ की तरह है जिसके लिए जीव–जगत से संबंध रखने वाली प्रत्येक वस्तु केवल ज्ञान का ही रूप है। वे सब में उसी ज्ञान का साक्षात्कार पाते हैं। वे मानव और मानवता के पुजारी हैं। यथार्थ के सहचर है। चाहे निराला जी कवि के रूप में हो या गद्यकार के रूप में, अद्‌भुत है। उनकी रचनाएं उनकी छाप लिए हुए हैं।

निराला जी ने अपने प्रबंध प्रतिभा में विद्यापति और चण्डीदास की तुलनात्मक आलोचना करते हुए सौन्दर्य शास्त्र के इस प्रसिद्ध सिद्धांत की ओर संकेत किया है कि ''कवि की यह बहुत बड़ी शक्ति है कि वह विषय से अपनी सत्ता को पृथक रखकर उसका विश्लेषण भी करें और फिर इच्छा के अनुसार उससे मिलकर एक भी हो जाए। विद्यापति में ये कवि के दोनों गुण थे। वे सौन्दर्य के द्रष्टा जबरदस्त थे और सौन्दर्य में तन्मय हो जाने की शक्ति भी उनमें अलौकिक थी। इस प्रकार निराला ने सौन्दर्य भावना में अपेक्षित आंशिक तटस्थता और पार्थक्य का सुचिंतित संकेत किया है। तदनन्तद उन्होंने भावना के भीतर किये गये सौन्दर्य पर्यवेक्षण को महत्व दिया है।

निराला ने अपने काव्य में मात्र प्रकृति और नारी सौन्दर्य का ही चित्रण नहीं किया है वरन् पुरुष सौन्दर्य का रूपांकन भी किया है। 'राम की शक्ति पूजा' शीर्षक कविता में वे राम के सौन्दर्य को कुछ इस प्रकार रूपायित करते हैं–

रघुनायक आगे अवनी पर नवनीत–चरम
दृढ़ जटा मुकुट है, विपर्यस्थ प्रतिलट से खुल
फैला पृष्ठ पर बाहुलों पर वक्ष पर विपुल
उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार
चमकती दूर ताराएं ज्यों ही कहीं पार।

निराला का साहित्यिक व्यक्तित्व बहुआयामी है। उन्होंने जहां एक ओर उत्कृष्ट कोटि की कविताओं, गीतों, प्रगीतों से हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है। वही उनका गद्य साहित्य भी कम महिमामण्डित नहीं है। हिन्दी गद्य साहित्य की विविध विधाओं– कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, आलोचना, रेखाचित्र, डायरी, संस्मरण आदि उनकी समर्थ लेखनी से महत्वपूर्ण कृतियां निःसृत हुई है। उन्होंने लगभग चार दशकों तक अनवरत साहित्य साधना की है। वे आधुनिक हिन्दी साहित्य के शिखर रचनाकार है। उनका साहित्यिक

व्यक्तित्व विराट, व्यापक और प्रभावशाली है। वे आधुनिक रचनाकारों के प्रेरणास्रोत और कवियों के पुरोधा है। उनका दुर्दमनीय अपराजेय पौरूष के कवि है, राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्रीय गौरव, भारतीय संस्कृति के संवाहक रचनाकार है और उनमें सबसे बड़ी बात यह है कि इतना सब होते हुए भी वे प्रगतिशील जीवन मूल्यों के रचनाकार हैं, सामंजस्य की समस्याओं के चितेरे है। श्री नारायण चतुर्वेदी के शब्दों में, ''निराला आधुनिक हिन्दी साहित्य के सर्वाधिक प्रखर, तेजस्वी और देदीप्यमान नक्षत्र थे। तुलसी के बाद से अब तक हिन्दी काव्य जगत में निराला की प्रतिभा का कोई और कवि नहीं हुआ। जब तक हिन्दी भाषा है, जब तक संसार में शुद्ध काव्य की पारखी है, जब तक दलित, पतित और पीड़ित मानव है और जब तक उनके कष्टों को वाणी देने की या वकील की आवश्यकता है तब तक निराला जी का यशः शरीर अमर है, तब तक उनकी वाणी जीवित है। अपनी विपुल साहित्य के द्वारा उन्होंने हिन्दी को समृद्ध बनाया और गौरवान्वित किया। उनका जीवन स्वयं अपने में एक साहित्य है। वे महाप्राण थे, वे स्वप्नद्रष्टा ही नहीं सृष्टिकर्ता भी थे। उनके पैर कठोर धरातल पर प्रतिष्ठित थे।

अभिव्यक्ति का सबसे प्रथम एवं प्रमुख साधन भाषा है क्योंकि हमारे अन्तःकरण में जैसे विचार एवं भाव रहते हैं, वाणी उन्हें साकार रूप प्रदान करके दूसरों के सम्मुख अभिव्यक्त किया करती है। हमारे विचार एवं भावों का सम्बन्ध हमारे जीवनानुभव से है क्योंकि हम जीवन में जितना अधिक अनुभव करते हैं, उतने ही अधिक हमारे विचार एवं भाव समृद्ध एवं सशक्त होते जाते है।। जयशंकर प्रसाद जी ने इसीलिए कहा था– जो कुछ हम अनुभव करते हैं, वाणी उसी का रूप है। यह भी सत्य है कि जिस व्यक्ति के विचार एवं भाव जितने अधिक उन्नत, उत्कृष्ट एवं सशक्त होंगे, उसकी भाषा भी उतनी ही उन्नत, उत्कृष्ट एवं प्रांजल होगी। अतः भाषा के बारे में यह विचार करना कि सभी कवियों एवं लेखकों की भाषा सरल, सुबोध एवं बोलचाल की होनी चाहिए, किसी भी दशा में समीचीन ज्ञात नहीं होता। स्वयं कवि निराला ने लिखा है– वृहत् साहित्य यानी ऊँचे भावों से भरा हुआ साहित्य कभी देश, काल या संख्या का अब तक यथार्थ कल्याण हुआ है। उन प्राचीन बड़े–बड़े साहित्यकारों की भाषा कभी जनता की भाषा नहीं रही। सोलह आने में चार आने जनता के लायक रहना साहित्य का ही भाव है क्योंकि सब तरह की अभिव्यक्तियां साहित्य में होती है।

इससे स्पष्ट है कि निराला जी भाषा की सरलता पर कभी भी जोर नहीं देते और न ही उसे हठात् बोलचाल के सर्वथा निकट रखने पर जोर देते हैं, परन्तु उनका यह स्पष्ट मत है कि–गूढ़ एवं गंभीर भावों से परिपूर्ण साहित्य कभी बोलचाल की सरल भाषा में नहीं लिखा जा सकता है। उसे तो उन भावों एवं विचारों के अनुसार गूढ़ एवं गंभीर भाषा में ही लिखना पड़ेगा क्योंकि भाषा कभी अपनी इच्छा के अनुसार सरल एवं बोलचाल की नहीं बनाई जाती अपितु वह तो भावों के अनुसार स्वयं ढलती चलती है। यदि भावों में गूढ़ता, गंभीरता एवं सशक्तता है तो भाषा में भी स्वयं गूढ़ता, गंभीरता एवं ओजस्विता आती चली जायेगी। अपने इसी आशय को प्रकट करते हुए निराला ने लिखा भी है कि बड़े–बड़े साहित्यकारों ने प्रकृति के अनुकूल ही भाषा लिखी है। कठिन भावों को व्यक्त करने में प्रायः भाषा भी कठिन हो गई है। जो मनुष्य जितना है, वह भाव तथा भाषा की उतनी ही गंभीरता तक पैठ सकता है। साहित्य में भावों की उच्चता का ही विचार रखना चाहिए। भाषा भावों की अनुगामिनी है।

निराला कभी ऐसी भाषा को उपयुक्त नहीं समझते थे, जिसमें भावों के वहन करने की शक्ति ही न हो जो जबरदस्ती सरल एंव सुबोध बनाई गई हो, जिसमें धारा वाहिकता न हो जो भावानुकूल न हो, जिसको जबरदस्ती गढ़ा गया हो अथवा जो कवि के मुख से स्वतः उद्भुत न हो। इसलिए निराला जी ने स्पष्ट लिखा था कि– ''आपसे निकली हुई और गढ़ी हुई भाषा छिपती नहीं। भावानुसारिणी कुछ मुश्किल होने पर भाषा समझा में आ जाती है।''

निराला ने अपनी अभिव्यक्ति के लिए अपनी भाषा को सर्वत्र भावों के अनुकूल ढालने का प्रयत्न किया है और यही कारण है कि निराला की भाषा में एकरूपता का सर्वथा अभाव दिखाई पड़ता है क्योंकि निराला के भाव जहां अधिक प्रौढ़, सशक्त, गंभीर एवं ओस्जवी रहे हैं, वहां उनकी भाषा में भी अपेक्षाकृत प्रौढ़ता, ओजस्विता, गंभीरता आदि गुण अधिक मात्रा में दिखाई पड़ते हैं किन्तु जहां निराला जन–जीवन के अनुकूल सरल भावों को अभिव्यक्त करना चाहते हैं वहां उनकी भाषा भी सरलता एवं व्यावहारिता से ओतप्रोत है तथा जहां पर कवि निराला ने क्रोध एवं आवेश में आकर समाज के तथा कथित शोषकों, अत्याचारियों, अन्यायितों अथवा पीड़कों को जली कटी सुनाई अथवा उन पर व्यंग्य वाणों की वर्षा की है वहां पर निराला की भाषा में अपेक्षाकृत तीखापन, चुभन, कटुता, रूखापन एवं लघुता के अधिक दर्शन होते हैं, यहां तक कि कतिपय स्थलों पर तो भाषा में 'भदेसता' भी आ गई है परन्तु धारावाहिकता एवं भावानुकूलता सर्वत्र विद्यमान है।

निराला की भाषा को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है–

1. प्रौढ़, सशक्त एवं ओजस्वी भाषा
2. माधुर्यगुणपूर्ण सौष्ठवमयी भाषा
3. सरल, सुबोध एवं व्यावहारिक भाषा
4. बोलचाल की चलती भाषा

निराला भारतीय जनजागरण के सजग प्रहरी हैं। वे मात्र एक भावुक और विचारशील कवि ही नहीं युग प्रवर्तक रचनाकार भी है। उन्होंने समाज की प्रत्येक गतिविधि को गहराई से देखा एवं परखा है और एक जागरूक नागरिक की हैसियत से उस पर आवश्यकतानुसार टिप्पणियाँ भी की है। उनकी रचनाओं में सत्यम्, शिवम् सुंन्दरम् की मंगलमय अभिव्यक्ति है।

सन्दर्भ–

1. निराला– निरूपमा
2. निराला– अपरा
3. श्री नारायण चतुर्वेदी, पावन स्मरण, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली, 1993, पृ0 71
4. काव्य और कला तथा अन्य निबंध (जयशंकर प्रसाद), पृ0 41
5. प्रबंध पद्म (निराला), पृ0 24
6. प्रबंध पद्म (निराला), पृ0 25
7. प्रबंध पद्म (निराला), पृ0 26
8. युगाराध्य निराला : गंगाधर मिश्र

भारत में जनगणना का इतिहास : एक अध्ययन

डॉ0 दिनेश सिंह,
असिस्टेंट प्रोफेसर,
इतिहास विभाग
भूपेश गुप्त महाविद्यालय, भभुआ
कैमूर, बिहार

जनगणना, भारत में आजादी से पहले और आजादी के बाद से आज तक लगातार 10 वर्ष के अन्तराल पर होती आ रही है। किसी भी देश के लिए जनगणना एक महत्वपूर्ण कार्य है। कहने के लिए तो केवल लोगों की संख्या का पता लगाना होता है लेकिन देश की चहुमुखी विकास, इसी पर निर्भर है। जनगणना के माध्यम से हम देश की वास्तविक स्थिति का पता लगा पाते हैं तथा स्थिति ज्ञात हो जाने पर उसके आवश्यकतानुसार योजनाओं का निर्माण कर पाते हैं। देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि स्थिति की जानकारी अद्यतन होती है जो देश के विकास में सहायक होती है।

भारत में पहली जनगणना 1867 से 1872 के पांच वर्षों के बीच हुई थी जिसे 1872 की जनगणना भी कहा जाता है और इसीलिए इसे समकालिक नहीं माना जाता। यह मशक्कत ब्रिटिश शासकों ने यह जानने के लिए कराई थी कि उनके उपनिवेशों का आकार, रचना अथवा जनसंख्या की विशेषताएं क्या है, परन्तु यह गणना समूचे ब्रिटिश नियंत्रित क्षेत्र में नहीं की गई थी और शनैःशनैः उनका प्रचार प्रसार पूरे देश में क्रमिक रूप से किया जाता था। राजनीतिक और अन्यान्य समस्याओं के बावजूद भारत में प्रत्येक दस वर्ष के अन्तराल में जनगणना होती है।

विकासशील देशों में भारत ही एकमात्र ऐसा देश है जहां प्रत्येक दस वर्ष के अन्तर पर निर्बाध रूप से जनगणना होती रही है। किसी अन्य विकासशील देश में ऐसा नहीं हुआ है। इसके अलावा भारत की जनगणना की प्रक्रिया पूरी होने के तीन चार सप्ताह के भीतर ही प्रत्येक राज्य की जनसंख्या का लिंगवार विवरण जारी कर दिया जाता है। जनगणना केवल लोगों की गिनती भर नहीं होती, भारत की जनगणना में आयु और महिलाओं का प्रतिशत/अनुपात जैसी जनसंख्या की विशेषताओं, धर्म, साक्षरता, भाषा एवं स्थान परिवर्तन जैसे सामाजिक–सांस्कृतिक कारक तथा आर्थिक गतिविधियों का विवरण भी एकत्रित और प्रकाशित किया जाता है। इसके अलावा जनसंख्या के गणना के एक वर्ष पूर्व की जाने वाली आवासीय गणना में आवास का प्रकार, सुविधाएं और परिवारों की परिसम्पत्तियों की सूचना भी एकत्रित की जाती है। विभिन्न जनगणनाओं के आंकड़ों के विश्लेषण से देश की जनसंख्या के विविध पहलुओं, व्यक्तियों के परस्पर व्यवहार के तौर तरीकों तथा प्रवृत्तियों को समझने में मदद मिलती है।

वर्ष 2011 की जनगणना भारत की 15वीं जनगणना तथा आजाद भारत की 7वीं जनगणना है। इसका नारा था– हमारी जनगणना, हमारा भविष्य। यानी इस बार की जनगणना पूरी तरह से 'भविष्य की तस्वीर के मद्देनजर की गई।'

तालिका–1

वर्ष	भारत के जनगणना आयुक्त
1881	डब्ल्यू0 डब्ल्यू0 प्लोवेडन

1891	जे0ए0वेंस
1901	एच0एच0रेस्ली और ई0ए0गैट
1911	ई0ए0गैट
1921	जे0टी0मार्टेन
1931	जे0एच0हूटन
1941–49	एम0डब्ल्यू0एम0ईस्टस
1949–53	आर0ए0गोपाल स्वामी
1958–1968	आशोक मित्र
1968–1973	ए0 चन्द्रशेखर
1973–1977	आर0बी0चेरी
1977–1983	पी0पद्मनाभा
1983–1989	वी0एस0वर्मा
1989–1994	ए0आर0नंदा
1994–1999	एम0विजयानुन्नी
1999–2004	जयंत कुमार भाटिया
2004–2009	देवेन्द्र कुमार सीकरी
2009–अब तक	सी0 चन्द्रमौली

सामार–योजना, जुलाई 2011, पेज 40

तालिका–2

जनसंख्या और 0–6 वर्ष के बच्चों में लिंगानुपात

जनगण्ना वर्ष	लिंगानुपात	0–6 वर्ष के बच्चों का लिंगानुपात
1961	941	976
1971	930	964
1981	934	62
1991	937	945
2001	933	927
2011	940	914

सामार–योजना, जुलाई 2011, पेज 8

तालिका–3

क्रम सं0	**देश**	**जनसंख्या**
1	चीन	1341000000
2	भारत	1210000000
3	अमरीका	311075000
4	इंडोनेशिया	7556363
5	ब्राजील	90732694

सामार–योजना, जुलाई 2011, पेज 33

तालिका–4

भारत में जनसंख्या की वृद्धि दर

जनगणना वर्ष	जनसंख्या (करोड़ में)	10–वर्षीय वृद्धि या कमी (करोड़ में)	दशक में प्रतिशत वृद्धि या कमी
1891	23.6	-	-
1901	23.6	0.0	0.0
1911	25.2	+1.6	+5.7
1921	25.1	-0.1	-0.3
(1891-1921)		+1.5	+0.19
1931	27.9	+2.8	+11.0
1941	31.9	+4.0	+14.2
1951	36.1	+7.2	+13.3
(1921-1951)		+11.0	+1.22
1961	43.9	+7.8	+21.5
1971	54.8	+10.9	+24.8
1981	68.3	+13.5	+24.7
(1951-1981)		+32.4	+2.14
1991	84.4	+16.1	+23.5
1995	91.6	+7.2	+8.5
(1981-1991)		+23.5	+2.11
(1991-1995)		+5.6	+2.06

रूद्रदत एवं सुन्दरम, भारतीय अर्थव्यवस्था पेज 48 वर्ष 1997

जनसंख्या स्थिरीकरण के लक्ष्य की प्राप्ति के हाल के वर्षों के अनवरत प्रयासों का ही फल है कि अब वांछित परिणाम मिलना शुरू हो गया है। भारत की जनगणना 2011 के प्रारंभिक परिणामें से भारत की जनसंख्या वृद्धि की कई अनुकूल प्रवृत्तियां परिलक्षित हुई है। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण प्रवृत्तियां निम्न है–

- 1911–1921 के अपवाद छोड़कर भारत में जनगणना के इतिहास में 2001–2011 का दशक वह पहला दशक है जब दस साल की अवधि में आबादी के निर्बाध वृद्धि पिछले दशक से कम रही।
- 2001–2011 के दौरान दशकीय वृद्धि के प्रतिशत में आजादी के बाद भारी ह्रास देखा गया।

- 2001–2011 का औसात घातांक (एक्स पॉनेन्शियल) वृद्धि दर 1991–2001 की घांतांक वृद्धि दर 1. 97 से घटकर 1.64 पर आ गया।
- 2001–2011 के बीच 15 राज्यों एवं केन्द्रशासित क्षेत्रों में 1.5 प्रतिशत की वार्षिक दर से जनसंख्या वृद्धि हुई जबकि इससे पहले के दशक में सिर्फ चार राज्यों का यह प्रतिशत था।
- संभवतः पहली बार 8 अधिकृत कार्यदल (ईजीजी) वाले राज्यों बिहार, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, राजस्थान, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश एवं उत्तराखड में जनसंख्या की वृद्धि दर में पर्याप्त कमी आयी है। जबकि इससे पूर्व लगातार इन राज्यों में प्रजनन दर एवं जनसंख्या वृद्धि दर ऊँची रही है।
- अति धनी आबादी वाले छः राज्यों उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार, पश्चिम बंगाल, आंध्र प्रदेश एवं मध्य प्रदेश में वृद्धि दर 1991–2001 की तुलना में 2001–2011 के दौरान घटी है।

भारत में 1931 में अंग्रेजों द्वारा जाति जनगणना कराने के बाद अब पुनः 2011 में जाति के आधार पर जनगणना का कार्य हुआ। इस पर बहस का दौर भी शुरू हो गया है। समाज के कुछ लोग इसके पक्ष में तर्क दे रहे हैं तो कुछ लोग इसके विपक्ष में। कुछ मिलाकर इस मुद्दे पर देश एकमत नहीं है। कहने की जरूरत नहीं है कि नई जनगणना में नई अस्मिताओं का नया दावा होगा और नई हलचल पैदा होगी।

भारत में जाति जनगणना 18.7 में शुरू हुई थी लेकिन इसके करीब 500 वर्ष पहले मिथिला के कवि शेखराचार्य ज्योतिरीश्वर ठाकुर रचित वर्ण रत्नाकर में 205 समुदायों का वर्णन मिलता है जिन्हें कम से कम आठ श्रेणियों में वर्णित किया गया– भ्रद, मंद, राजसेवक, वनवासी, पहाड़ी, अपराधी, वणिकपुत्र, राजपुत्र। इन श्रेणियों के अलावा भिखारियों की भी एक श्रेणी है और कुछ बची हुई जातियों को अन्यान्य की श्रेणी में रखा गया है।

भारत में वैदिक काल से लेकर आज के पीपुल्स ऑफ इंडिया प्रोजेक्ट तक जातियों का श्रेणीकरण होता रहा है। ऋग्वेद में वर्णों के अतिरिक्त कम से कम छः व्यवसाय एवं शिल्प से संबंधित छः समुदायों का जिक्र मिलता है। मनु ने छः अनुलोम, छः प्रतिलोम, एवं 20 मिश्रित जातियों के साथ 23 व्यवसायों की, याज्ञवल्क्य ने चार वर्णों के अतिरिक्त 13 अन्य जातियों की तथा उशना ने 40 जातियों एवं उनके व्यवसायो की चर्चा की है। सभी स्मृतियों की तालिका में कम से कम 100 जातियों के नाम सामने आते है। डॉ0 पांडुरंग वामण काले ने ईसा पूर्व 500 से 1000 ई0 के बीच स्मृतियों तथा अन्य धर्मशास्त्र ग्रंथों में वर्णित 155 जातियों की सूची दी है। चाणक्य के अर्थशास्त्र, मनुसंहिता, महाभारत और आइने अकबरी में जातियों, समुदायों की अखिल भारतीय सूची मिलती है।

वर्ष 2011 की जनगणना का खर्च– इस अभियान के दौरान देश के 35 राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों के 640 जिलों, 5767 तहसीलों, 7742 कस्बों और 6 लाख से भी ज्यादा गांवों को कवर किया गया है। इस पूरी प्रक्रिया पर सरकार करीब 2209 करोड़ रूपये खर्च कर रही है। राष्ट्रीय जनगणना रजिस्टर पर करीब 3756 करोड़ रूपये खर्च होने के अनुमान है। इस प्रकार जनगणना पर प्रति व्यक्ति लगात 18.19 रूपये निकाली गयी है। इसमें 2.7 लाख कार्यकर्ताओं ने कार्य किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत में जनगणना का कार्य बड़ा व्यापक है। देश में जनसंख्या के दशकों से चले आ रहे प्रयासों ने अब मिश्रित ही सही परिणाम देना आरंभ कर दिया है। 2011 की जनगणना के परिणामों में प्रसन्न और गौरवान्वित होने की अनेक वजहें निहित है हालांकि इस प्रसन्नता के साथ–साथ बेचैन कर देने वाली गंभीर चिंताओं का बोझ भी जुड़ा हुआ है।

संदर्भ सूची–

1. योजना, नई दिल्ली, जुलाई 2011
2. रूददत एवं के0पी0एम0सुन्दरम– भारतीय अर्थव्यवस्था, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, रामनगर, नई दिल्ली, वर्ष 1997
3. श्रीकांत, बिहार : राज और समाज– वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2011
4. चौबे कमल नयन– जातियों का राजनीतिकरण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2008
5. प्रभात खबर पटना, 8 फरवरी, 2011, पृष्ठ 9
6. हिन्दुस्तान पटना (गौरवमयी 25 साल सफरनामा, 1986–2011) 20 अगस्त 2011, पृष्ठ 04
7. दीक्षित, हृदय नारायण, जातिविहीन जनगणना क्यों, दैनिक जागरण, पटना, 17 अप्रैल 2010,पृष्ठ 10
8. नैयर, कुलदीप– जातिवादी राजनीति को बढ़ावा, दैनिक जागरण, पटना 20 मई, 2010, पृष्ठ 10

आधुनिक औद्योगिक युग में पारिवारिक कार्यों का बदलता स्वरूप

डा0 आलोक कुमार कश्यप
एसोसिएट प्रोफेसर, समाज शास्त्र विभाग,
महाराज बलवन्त सिंह पी0 जी0 कालेज,
गंगापुर, वाराणसी, उ0प्र0।

महेन्द्र कुमार
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाज शास्त्र विभाग,
महाराज बलवन्त सिंह पी0 जी0 कालेज,
गंगापुर, वाराणसी, उ0प्र0

आधुनिक औद्योगिक क्रांति के परिणाम स्वरूप परिवार की संरचना और कार्य में अनेक परिवर्तन पर लक्षित हुए हैं पहले के सभी समाजों में परिवार समाज को सबसे महत्वपूर्ण और मौलिक संस्था थी जीवन का अधिकांश व्यापार परिवार के माध्यम से संपन्न होता था औद्योगिक समाजों में परिवार उत्पादन की इकाई नहीं है बच्चों के शिक्षण का कार्य शिक्षण संस्थाओं ने ले लिया है रसोई का कार्य व्यावसायिक भोजनालय तथा जलपान गृह में चला गया है मनोरंजन के लिए पृथक संगठन स्थापित हो गए हैं सामाजिक सुरक्षा का उत्तरदायित्व राज्य के पास चला गया है और धर्म के घटते हुए प्रभाव के कारण धार्मिक कृत्यों का स्थान गांव हो गया है पति और पत्नी का अधिकांश समय घर के बाहर व्यतीत होता है फिर भी परिवार बना हुआ है और उसके द्वारा कुछ महत्वपूर्ण कार्य संपन्न होते हैं जिन्हें परिवार का स्थाई या विशिष्ठ कार्य कहा जाता है मेरे इस शोध पत्र का उद्देश्य समाज में परिवार की महत्ता को उद्घाटित करना है।

मुख्य शब्द – औद्योगिक क्रांति मौलिक संस्था परिवार सामाजिक नियंत्रण

मानव जीवन के इतिहास का अवलोकन किया जाए तो पता चलता है कि परिवार सामाजिक नियंत्रण का सबसे प्रभाव कारी अभिकरण रहा है यह अपने कार्यों एवं संरचना के द्वारा अपने सदस्यों को सर्वाधिक प्रभावित करता है परिवार आदर्शों का निर्माण करता है समाज के अस्तित्व की रक्षा करने वाले सभी उत्तरदायित्व को निर्धारित करता है यही कारण है कि व्यक्ति के व्यवहारों पर नियंत्रण बनाए रखने में परिवार सबसे अधिक प्रभावकारी सिद्ध हुआ है एंडरसन का कथन है कि परिवार का एक रूप वह है जिसमें हम जान लेते हैं और दूसरा रूप हुआ है जिसमें हम बच्चों को जन्म देते हैं परिवार की सार्वभौमिकता इसी तथ्य से स्पष्ट हो जाती है कि इसमें से ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है जो परिवार के इन दोनों रूपों में से किसी का भी सदस्य ना हो पैराग्राफ चेंज विभिन्न समाज शास्त्रियों ने परिवार को भिन्न भिन्न प्रकार से परिभाषित किया है एक संस्था के रूप में सभी समाजों में परिवार का रूप लगभग एक समान है लेकिन परिवार के आकार और कार्यों के दृष्टिकोण से भिन्न–भिन्न समाजों में इसका रूप भी भिन्न–भिन्न पाया जाता है मैकाइवर और पेज के अनुसार परिवार स्थाई

यौन संबंधों पर आधारित एक ऐसा सुनिश्चित एवं लघु समूह है जिसमें संतानोत्पत्ति के अवसर के साथ ही उनके पालन पोषण की व्यवस्था रहती है सदरलैंड एवं एडवर्ड के अनुसार परिवार व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जो विवाह रक्त या गोद लेने के बंधनों से एक गृहस्थी का निर्माण करते हैं खुले का

कथन है कि परिवार एकमात्र ऐसा समूह है जो बच्चों की मानसिकता और आदर्शों का निर्माण करता है बच्चों का पालन पोषण संस्कृत की सी तथा एक–दूसरे को सहयोग देने की शिक्षा परिवार के ऐसे कार्य हैं जो किसी भी दूसरे मानव समूहों द्वारा इतने प्रत्यक्ष तथा अनौपचारिक रूप से पूरे नहीं किए जा सकते समाज के अस्तित्व की रक्षा करने वाले सभी कार्यों को पूरा करने का दायित्व परिवार का ही है आगमन एवं नियम के अनुसार परिवार लगभग एक स्थाई समिति है जो पति पत्नी से निर्मित होती है चाहे उनके संतान हो अथवा ना किसलिए डेविस के अनुसार परिवार ऐसे व्यक्तियों का समूह है जिनके पारस्परिक संबंध सगोत्र अता पर आधारित होते हैं और जो इस प्रकार एक दूसरे के रक्त संबंधी होते हैं वर्ग एवं लाख के अनुसार परिवार व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जो विवाह रस अथवा गोद लेने के संबंधों द्वारा संगठित है एक छोटी सी गृहस्थी का निर्माण करते हैं और पति पत्नी माता पिता पुत्र पुत्री भाई–बहन के रूप में एक दूसरे से अंतर क्रिया करते हैं तथा एक सामान्य संस्कृत का निर्माण तथा देखभाल करते हैं वास्तविकता यह है कि परिवार पति–पत्नी बच्चों तथा निकट के संबंधों का एक स्थाई संगठन है जिसे विवाह संतान उत्पत्ति और वंश नाम के आधार पर व्यवस्थित रखा जाता है

बच्चों का संस्कार करने और समाज के आचार व्यवहार में उन्हें दीक्षित करने का काम मुख्य रूप से परिवार में होता है परिवार के द्वारा समाज की संस्कृति विरासत एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती है व्यक्ति की सामाजिक मर्यादा बहुत कुछ परिवार से ही निर्धारित होती है नर नारी के यौन संबंध मुख्यतः परिवार के दायरे में निबंध होते हैं और समाज में उत्पन्न या नगरी समाज को यदि छोड़ दिया जाए तो व्यक्ति का परिचय मुख्यतः उसके परिवार और कुल के आधार पर होता है संसार के विभिन्न देशों और विभिन्न कालों में यद्यपि रचनाकार संबंध और कार्य को दृष्टि से परिवार के अनेक भेद हैं किंतु परिवार की यह कार्य सार्वजनिक और सर्वकालिक है परिवार के सदस्य एक पारिवारिक अनुशासन व्यवस्था के अतिरिक्त पति और पत्नी भाई और बहन दादा और पोता चाचा और भतीजे सास और पुत्र जैसे संबंधों कर्तव्यों और अधिकारों से परस्पर आवाज अन्य सामाजिक समूहों के संदर्भ में एक घनिष्ठता अंतरंग समूह के रूप में रहते हैं परिवार के दायरे में स्त्री पुरुष के बीच कार्य विभाजन में सार्वजनिक और शहरों का लिक है स्त्रियों गृहिणी के रूप में अधिकांश समय घर में व्यतीत करती भोजन बनाने बच्चों की देखभाल घर की साफ सफाई करना और कपड़ों की वाशिंग मशीन पर लगातार धुलाई आज ऐसे काम है जो परिवार में स्त्रियां ही करते हैं पुरुष बाहरी तथा अधिक संघ के कार्यकर्ता है जैसे कृषि व्यापार उद्योग पशु चारण शिकार इतिहास

मानव समाज के प्रारंभिक काल से देखा जाए तो परिवार का सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास के सभी स्तरों में बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है सामान्यतः परिवार के दो रूप हैं एक रूप हुआ है जिसमें हम जन्म लेते हैं और दूसरा रूप हुआ है जिसमें हम बच्चों को जन्म देते हैं मानव समाज में परिवार का महत्व एवं इसकी सार्वभौमिकता इसी तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि हम में से ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है जो परिवार के इन दोनों रूपों में से किसी का भी सदस्य ना हो स्पष्ट है कि मनुष्य परिवार का सदस्य प्रकृति से होता है परिवार का निर्माण करते समय मनुष्य की दृष्टि समाज को विकसित करने और उसके उत्कर्ष में लगी रहती है व्यक्ति स्वाभाविक रूप से परिवार और समाज के गठन और व्यवस्था में संयुक्त होता है तथा उसे आगामी पीढ़ी के लिए हस्तांतरित करने का कार्य करता है इस प्रकार परिवार एक इकाई होते हुए भी व्यक्ति के जीवन के लिए सर्वथा आवश्यक संस्था है मनुष्य के जीवन की रक्षा तथा जेल की अपेक्षाओं की संतोष परिवार के माध्यम से होती है परिवार व्यक्ति के सामाजिक गुणों का विकास करके उसके व्यक्तित्व को समय के साथ अनुकूलन करने के योग्य बनाता है

परिवार ही उसे समाज में प्रचलित आचरण के नियमों से परिचित कराता है और उसका पालन भी सुनिश्चित करता है जिससे व्यक्ति अपना संपूर्ण व्यवहार नियंत्रित दायरे में रहकर करदा करने हेतु सीखता है पैराग्राफ सामाजिक नियंत्रण के क्षेत्र में भी परिवार की अहम भूमिका होती है परिवार सामाजिक नियंत्रण के अनौपचारिक अभिकरण के रूप में सामाजिकरण के द्वारा व्यक्ति को सामाजिक बनाने मूल्यों आदर्शों एवं नियमों से परिचित कराता है व्यक्ति परिवार के निर्देशानुसार स्वयं ही सामाजिक नियमों को अपने अंदर समाहित करता है तथा उसी के अनुसार आचरण करने लगता है जिससे न सिर्फ परिवार में नियंत्रण बना रहता है बल्कि सामाजिक नियंत्रण स्थापित होता है परिवार ही बच्चों के आदर्श नागरिकता का पाठ पढ़ाता है और उसमें सब गुणों का विकास करता है परिवार के सदस्य माता पिता भाई बहन पति पत्नी एवं बच्चे प्रेम प्रशंसा निंदा अपमान डांट फटकार और उपेक्षा के द्वारा व्यक्ति के व्यवहारों पर नियंत्रण करता है

परिवार विवाह संस्था के माध्यम से एक पुरुष और एक स्त्री को पति पत्नी के रूप में स्वीकार कर उन्हें का मृत्यु की स्वीकृति प्रदान करता है भारत में परिवारों की यह एक अभूतपूर्व विशेषता है कि यहां पर स्त्री और पुरुष के विवाह के पूर्व किसी भी प्रकार के शारीरिक संबंधों को अनैतिक माना जाता है यही कारण है कि परिवार का कोई भी सदस्य ऐसा कार्य नहीं कर पाता है जिसे एक काम अपराध के अंतर्गत रखा जा सके इस प्रकार परिवार समाज के सदस्यों को नैतिक व्यवहार करने को बाध्य करके सामाजिक संगठन को बनाए रखने में सहायक भूमिका निभाता है पैराग्राफ चेंज भारतीय धर्म के तमाम ग्रंथों में भी परिवार को महत्वपूर्ण बताया गया है इनके अनुसार किसी भी व्यक्ति को मोक्ष की प्राप्ति तब तक नहीं हो सकती है जब तक कि वह संतानोत्पत्ति के द्वारा पितृ ऋण से मुक्ति नहीं पा लेता है इस प्रकार प्रत्येक परिवार अपने सदस्यों को संतानोत्पत्ति के महत्व को बता कर तथा इसके पीछे धर्म की अवधारणा को व्यक्त करके सामाजिक संगठन को बनाए रखने में अतुलनीय योगदान देता है प्रत्येक समाज में परिवारों का संगठन इस प्रकार से हुआ है कि परिवार के सभी सदस्य यह सोचकर कोई कार्य करता है कि उसका व्यवहार पूरे परिवार का व्यवहार है अतः उसे ऐसा कोई भी कार्य नहीं करना चाहिए जिससे परिवार की परंपरागत छवि को कोई ठेस लगे इस प्रकार परिवार का प्रतीक सदस्य इसी प्रकार की भावना से प्रभावित होकर कार्य करता है पैराग्राफ परिवार ही वह संस्था है जहां पर व्यक्ति का समाजीकरण प्रारंभ होता है और समाप्त भी व्यक्ति आजीवन अपने परिवार से प्रभावित होकर ही अपने व्यवहारों को उसके अनुरूप बनाता है और अन्य जितने भी साधन समाजीकरण में सहयोग करते हैं वे द्वितीयक महत्व के होते हैं व्यक्ति का व्यक्तित्व उसी प्रकार का बनता है जिस प्रकार का उनका सामाजिकरण उनका परिवार करता है इस प्रकार समाजीकरण के द्वारा व्यक्तियों के अनुरूप व्यवहार करना सीखता है संस्कृत परिवार से ही हुआ है और इसका हस्तांतरण भी परिवारों के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में होता रहा है आज के आधुनिक युग में भी यही स्थिति है परिवार में अपने से बड़ों के व्यवहार छोटे अंकुरण करके अपने जीवन में चरितार्थ करते हैं किसी भी संस्था की विशेषता उसकी संस्कृत हुआ करती है और इन संस्कृतियों का संरक्षण तथा प्रसारण परिवार के माध्यम से ही संभव हो पाता है नई आधुनिक ज्ञान विज्ञान प्रौद्योगिकी आज के संचरण का एक प्रमुख माध्यम परिवार ही है पैराग्राफ चेंज इस प्रकार भारतीय समाज में भी में ही नहीं बल्कि इस संसार के प्रत्येक स्थान पर परिवार एक ऐसी संस्था के रूप में समाज में स्थापित रही है कि यह समाज को एक विशेष स्वरुप प्रदान करती है आज के आधुनिक औद्योगिक युग में जो तमाम क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं उसका प्रभाव परिवार के

कार्यों पर निश्चित रूप से पड़ा है परंतु आज भी परिवारों के महत्व में किसी भी प्रकार से कमी नहीं आई बल्कि पारिवारिक कार्यों में लगातार बढ़ोतरी होती जा रही है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. महाजन धर्मवीर एवं महाजन कमलेश, 2005 नातेदारी विवाह एवं परिवार का समाजशास्त्र विवके प्रकाशन दिल्ली पेज 188–213
2. सिंह जे. पी., 2004 समाजशास्त्र अवधारणा एवं सिद्धांत प्रेंटिस हॉल ऑफ़ इंडिया नई दिल्ली पेज 195–205
3. गुप्ता, एम. एल. एवं शर्मा, डी. डी., 2008 समाजशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, पेज 321–323
4. सिंह, जे.पी., समाजशास्त्र अवधारणाएँ एवं सिद्धान्त, प्रेंटिस हाल आफ इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2006

जीवन में बढ़ता तनाव और खुशियों की घटती पैदावार

डॉ0 हरिओम मिश्र
सहायक आचार्य, समाजशास्त्र विभाग,
उदित नारायण पी0जी0कालेज,
पडरौना, कुशीनगर (उ0प्र0)

मानव जीवन के वास्तविक स्वरूप, महत्व और अन्तिम लक्ष्य के सम्बन्ध में विश्व इतिहास में सदैव ही दो परस्पर विरोधी विचार धाराएं देखने को मिलती हैं। एक विचारधारा यह मानती है कि इस विश्व में सब कुछ क्षण भंगुर और नश्वर है, अतः इसके पीछे दौड़ना व्यर्थ है। विश्व को मिथ्या मानने वाली इस विचार धारा को हम आध्यात्मिक कह सकते हैं। इसके विपरीत जो दूसरी विचार धारा पायी जाती है वो भौतिकवाद से सम्बन्धित है और इस विश्व को ही सत्य मानती है। यह विचारधारा जो कुछ भी संसाधन या सामग्री उपलब्ध है उसके सर्वोत्तम भोग पर बल देती है। हमारे यहां भारतीय संस्कृति में पुरूषार्थ की अवधारणा के अन्तर्गत इन दोनों ही परस्पर विरोधी विचारधाराओं का अद्‌भुत समन्वय देखने को मिलता है। इसके अन्तर्गत मानव जीवन के लक्ष्य के रूप में एक ओर धर्म और मोक्ष को स्थान दिया गया तो दूसरी ओर इस जगत के संचालन के लिए अर्थ एवं काम को भी वरीयता दी गई। साथ ही साथ व्यक्तित्व विकास से सामाजिक विकास की ओर बढ़ने के लिए जीवन में विभिन्न प्रकार के संस्कारों का समावेश किया गया।

भारतीय समाज की पूरी व्यवस्था इस प्रकार से बनायी गई कि इसके अन्तर्गत व्यक्ति की सभी अनिवार्य आवश्यकताएं तनाव मुक्त वातावरण में पूर्ण हो जाएं और यदि जीवन में कभी प्रतिकूल परिस्थितियां आए तो व्यक्ति अपने परिवार, पड़ोस, नातेदार इत्यादि के सम्पर्क से ही इन प्रतिकूल परिस्थितियों से मुक्त हो जाए क्योंकि समाज की संरचना में प्रेम, करूणा, दया, सहानुभति, समर्पण इत्यादि आधार के रूप में स्थापित थे। परन्तु पिछले कुछ दशकों या वास्तविक रूप से कहें तो अंग्रेजों के भारत में आने के बाद पश्चिमीकरण के रूप में एक नवीन विचारधारा का भारत में प्रसार होना प्रारम्भ हुआ जिसने भौतिकतावाद को खुलेआम प्रश्रय दिया। इसके परिणामस्वरूप औद्योगीकरण व नगरीकरण की प्रक्रियाओं ने भारतीय समाज को अपने आगोश में ले लिया। इन प्रक्रियाओं के परिणाम स्वरूप देश ने आर्थिक क्षेत्र में काफी प्रगति की परन्तु साथ ही भौतिक प्रगति की इस आंधी ने प्रेम, करूणा, दया, सहानूभुति, समर्पण, समता, सामूहिकता जैसे आधारभूत तत्वों को धीरे–धीरे खत्म कर दिया और इनके स्थान पर व्यक्तिवाद एवं स्वार्थ को प्रश्रय दिया। इसके चलते आज व्यक्ति धीरे–धीरे मशीन के रूप में परिवर्तित होता जा रहा है और समाज में चारों ओर एक दूसरे से आगे निकलने की होड़ लगी हुई है। इसके दुष्परिणाम स्वरूप जीवन में तनाव बढ़ता जा रहा है और सच्चाई तो यह है कि भौतिक प्रतिस्पर्धा के वर्तमान युग में व्यक्ति अपने लिए भी खुशी के पल नही खोज पा रहा।

आज व्यक्ति के जीवन चक्र की सभी प्रमुख अवस्थाएं जैसे–बाल्यावस्था, किशोरावस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था तथा वृद्धावस्था तनाव एवं द्वन्द से ग्रस्त हैं। उदाहरण के लिए यदि बाल्यावस्था को लें तो जन्म के पश्चात् लगभग 6 वर्ष तक बालक तनाव मुक्त जीवन जीता था, संयुक्त परिवार के बीच उसका आदर्श पालन पोषण एवं समाजीकरण होता था, मित्र मण्डली एवं पड़ोस का उस पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता था परन्तु अब धीरे–धीरे इन चीजों से वह दूर होता जा रहा है क्योंकि अब परिवार पति–पत्नी और बच्चों तक सिमटता जा रहा है। भौतिकता की चमक–दमक ने पति–पत्नी दोनों को कमाऊ बना दिया है, परिणामतः

जन्म के पश्चात् कुछ समय तक बच्चे को आया के संरक्षण में और फिर डे–केयर होम में छोड़ा जाने लगा है। इसके पश्चात् ज्योंही वह अपने पैरो पर खड़ा होना प्रारम्भ करता है, उसे ज्ञान की खोज में विद्यालय में छोड़ दिया जाता है। अब तो तीन–तीन साल तक के बच्चों का विद्यालय जाना आम बात हो गया है और इन विद्यालयों में दाखिले के समय बच्चे और उनके अभिभावकों का इस प्रकार परीक्षण किया जाता है जैसे बच्चा आई.ए.एस. के साक्षात्कार में बैठा हो। माता–पिता भी दाखिले की इस प्रक्रिया को अपने मान–सम्मान व प्रतिष्ठा से देखते हैं और बच्चे पर जो अभी ठीक से खड़ा होना भी नही जानता अपनी उम्मीदों का पहाड़ थोप देते हैं। प्रायः बच्चों में दाखिलें की इस प्रक्रिया के कारण विद्यालय जाने से पूर्व ही मस्तिष्क में विद्यालय के प्रति भय का माहौल बन जाता है और वो पूरे पढ़ाई के दौरान इस भय से बाहर नही निकल पाते। इस प्रकार बाल्यावस्था से ही अब बच्चे तनाव युक्त जीवन जीने को बाध्य हो रहे हैं। विद्यालय के बैग का बोझ और उस बैग से जुड़े क्रिया–कलाप तथा माता–पिता की उम्मीदें बच्चों से न सिर्फ उसका बचपन ही छीन रहीं अपितु उसे एक मशीनी जीवन की ओर भी ढ़केल रही हैं। सुबह अलार्म घड़ी की आवाज के साथ उठने वाले आज के बच्चे घर से विद्यालय, विद्यालय से घर, फिर विद्यालय का काम, फिर घर से ट्यूशन, फिर ट्यूशन का काम, मनोरंजन के नाम पर टी0वी0, मोबाइल, कम्प्यूटर इत्यादि से ऐसे घिर गए हैं कि धीरे–धीरे वे भावना शून्य होते जा रहे हैं। जीवन की प्रारम्भिक अवस्था की इस भागम–भाग, विद्यालय का बोझ व परीक्षा परिणाम की चिंता, माता–पिता का पर्याप्त समय न मिलना इत्यादि के चलते आज के बच्चे तनाव से ग्रस्त नजर आते हैं और इसकी अभिव्यक्ति स्वरूप छोटी–छोटी बात पर गुस्सा होना, चिड़–चिड़ा होना, माता–पिता की बात न मानना इत्यादि के रूप में देखने को मिलता है।

बाल्यावस्था के पश्चात् बच्चा किशोरावस्था में प्रवेश करता है जिसे बाल मनोवैज्ञानिकों ने सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना है। बच्चे के मन मस्तिष्क में संघर्ष और विरोध चर्म पर होता है। इस अवस्था में बच्चा प्रत्येक वस्तु के बारे में स्वयं निर्णय लेते हुए अपनी एक अलग विचारधारा बनाना चाहता है। इस अवस्था में बच्चे को परिवार, पास–पड़ोस, मित्र मण्डली की सर्वाधिक आवश्यकता पड़ती है, परन्तु इसके विपरीत वह यह पाता है कि सभी लोग भौतिकवादी चीजों के संग्रह में लिप्त हैं और उससे भी इन चीजों के संग्रह की उम्मीद करते हैं। अतः इस अवस्था में भी वह लोगों की उम्मीदों के पहाड़ों के नीचे दब सा जाता है और असफलता के भय के बीच तनावपूर्ण जीवन व्यतीत करता है।

किशोरावस्था के पश्चात् बच्चा युवास्था में प्रवेश करता है जहां उसे अब स्वयं के परिवार को बसाना होता है तथा आत्मनिर्भर बनते हुए रोजी–रोटी की व्यवस्था करनी होती है। इस अवस्था में भी भौतिकता की प्रधानता सर्वोपरि होती है क्योंकि पहले जहां विवाह में संस्कार प्रमुख होता था तो वहीं अब दिखावापन व दहेज प्रमुख हो गया है। आज जीवन साथी व रोजगार दोनों के चयन में पैसा को वारीयता दिया जा रहा है। परिणाम स्वरूप व्यक्ति जो कार्य करना चाहता है वह कार्य न करके उस कार्य को करता है जिसमें पैसा अधिक हो। इस प्रकार भौतिकता के प्रभाव में न तो मनोनुकूल जीवन साथी की प्राप्ति होती है और न ही रोजगार। ये दोनों ही चीजें व्यक्ति को आजीवन तनाव देती रहती हैं क्योंकि इनका आधार ही स्वार्थ होता है। आज विवाहेत्तर सम्बन्ध, तलाक, घरेलू हिंसा, यौन शोषण, दहेज हत्या, भ्रष्टाचार इत्यादि का एक प्रमुख कारण योग्य जीवन साथी का अभाव व मनोनुकूल रोजगार का न मिलना भी है।

युवावस्था के बाद व्यक्ति प्रौढ़ावस्था में प्रवेश करता है और अब वह स्वयं में माता–पिता की भूमिका में होता है। इस अवस्था तक आते–आते व्यक्ति भौतिक जगत में इतना लिप्त हो जाता है कि वह बाल्यावस्था, किशोरावस्था और युवावस्था में जिस तनाव का अनुभव कर चुका होता है उससे बाहर निकलने

के बजाय अपने बच्चों को भी उसी जीवन प्रणाली का हिस्सा बनाने लगता है, क्योंकि कहीं न कहीं वह पाता है कि समाज भी इसी प्रकार की जीवन प्रणाली की उम्मीद करता है। प्रौढ़ावस्था के पश्चात् व्यक्ति वृद्धावस्था में प्रवेश करता है जहां वह दादा–दादी, नाना–नानी इत्यादि भूमिकाओं में होता है और इस अवस्था में उसका जीवन की वास्तविकता से सम्पर्क होता है। अब उसकी उम्र ढल चुकी होती है, रोजगार से सेवानिवृत्त हो गया होता है, पराश्रितता बढ़ती जाती है, परिवार के प्रेम की सर्वाधिक आवश्यकता पड़ती है लेकिन उसके बच्चे अपने भौतिकता की चमक दमक में उसे अपने साथ रखने के बजाय वृद्धाश्रम में रखना अधिक बेहतर समझते हैं। इस अवस्था में स्वयं को पाकर जहां व्यक्ति में तनाव चर्म पर होता है तो वहीं उसे एहसास होता है कि वास्तव में जो भौतिक चमक दमक है वह एक सीमा तक तो उचित है लेकिन उसके पीछे पागल होना मानव की सबसे बड़ी भूल और तनाव का प्रमुख कारण है।

इस प्रकार भौतिकतावाद के प्रभाव में आज व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन चक्र तनाव से बढ़ता जा रहा है और व्यक्ति के जीवन से खुशियां घटती जा रही है। निष्कर्षतः कह सकते हैं कि मानव जीवन के लिए भौतिक सुख सुविधायें एक साधन के रूप में है जिनसे हमारा जीवन सरल बनता है। लेकिन धीरे–धीरे मानव भौतिक सुख सुविधाओं को ही साध्य बनाता जा रहा है और इसके दुष्परिणाम स्वरूप व्यक्ति तनाव, चिन्ता, गुस्सा, सिरदर्द, हताशा, अनिद्रा इत्यादि विभिन्न समस्याओं से ग्रस्त नजर आ रहा है। अतः इन समस्याओं के निराकरण के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति वैचारिकी में परिवर्तन लाए और सन्तोष की भावना का विकास करते हुए स्वयं के लिए समय निकाले। साथ ही परिवार, पास–पड़ोस, मित्र मण्डली इत्यादि के साथ प्रेम, करूणा, सहानुभूमि जैसे मानवीय गुणों के साथ रहते हुए दिन प्रतिदिन की छोटी–छोटी खुशियों को सहेजने का प्रयास करे व तनाव मुक्त जीवन व्यतीत करे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

5. सिंह हिरेन्द्र प्रताप, भारतीय सामाजिक व्यवस्था, मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन, वाराणसी, 2004
6. श्रीनिवास एम0एन0, आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, राज कमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2007
7. सिंह, जे.पी., समाजशास्त्र अवधारणाएँ एवं सिद्धान्त, प्रेंटिस हाल आफ इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2006
8. पाठक पी0डी0, शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा, 2010/2011
9. बिष्ट एच0बी0, बाल मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा, 2007/2008

अस्पृश्यता औंर गांधीजी

डॉ रश्मि नायक
असिस्टेंट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान
सुधाकर महिला पी जी कालेज वाराणसी

सांराश–

भारतीय समाज में अस्पृश्यता की जड़े अत्यन्त गहरी रही हैं। वैदिक काल में वर्ण–व्यवस्था आधारित समाज में जात–पात,अस्पृश्यता आदि का कोई स्थान नही था।लेकिन धीरें–धीरे इसकी जड़े समाज मे गहरी होती गई, और समाज विकृत हो गया। अनेक समाज सुधारकों, विद्धवानों ने समाज से दूर करने के लिए अनेक प्रयास किया। महात्मा गांधी जी ने भी समाज से अस्पृश्यता दूर करने के लिए अनेंक प्रयास किया। स्वतन्त्रता के पश्चात भारत में संविधान लागू कर समस्त नागरिको को स्वतन्त्रता समानता का अधिकार प्रदान कर समतामूलक समाज की स्थापना का प्रयास किया गया। लेकिन अभी भी अस्पृश्यता की समस्या जड़ से खत्म नहीं हुई हैं।

मुख्य शब्द–अस्पृश्यता,वर्ण–व्यवस्था,शक्ति विकेन्द्रीकरण

वैदिक काल में अस्पृश्यता का कोइ उल्लेख नहीं पाया जाता हैं। परन्तु वर्ण व्यवस्था के विकृत हो जाने और जात पात की भेदभाव बढ़ जाने के कारण अश्पृश्यता को जन्म मिला इसका कोइ प्रमाण वेदो में नहीं हैं। लेकिन वज्रसूचिक उपनिषद में तथा महाभारत के कुछ स्थलों में जाति भेदभाव की निदा की गई हैं। अनेक ऋषिमुनियों एंव महावीर तथा अनेक समाज सुधारक को जैसें राजाराममोहन राय स्वामी दयानन्द सरस्वती आदि ने भी इसकी आलोचना की और इसे दूर करने का प्रयास किया । लेकिन गांधी जी ने ऐसे आर्दश समाज की कल्पना की जो प्रेम सत्य अहिंसा पर आधारित हों,एक ऐसा समाज जो स्वार्थ शोषण रहित समानता पर आधारित तथा श्रम को महत्व देने वाला शक्ति विकेन्द्रीकरण पर आधरित हो।जहॉ मानव मानव का सम्बन्ध निकटतम हो,सरकार का हस्तक्षेप न्यूनतम हो,व आर्दश जीवन की प्राप्ति का लक्ष्य सर्वोपीर हो अर्थात जिसमें उॅच नीच जात पात सम्प्रदायिक भेदभाव वर्ग संघर्ष तथा पारस्परिक प्रतियोगिता से परे सत्य व अहिंसा पर आधारित न्यायपूर्ण समाज हो (1) इसलिए गांधीजी अस्पृश्यता के विरोधी रहे। गांधीजी ने अस्प्श्यो के साथ हो रहे अन्याय के विरुद्व संर्घष दक्षिण अफ्रीका में हो रहे अन्याय रंग भेदभाव के विरुद्व व प्रवासी भारतीयों के मानव अधिकारों के लिए संधर्ष किय। (2) गांधी जी ने अस्पृश्यता को सबसे बड़ी बुराई माना औंर इसे जड़ से समाप्त करने का संकल्प लिया अपने मद्रास में दिए हुए भाषण में कहा कि अश्पृश्यता एक बड़ी शैतानियत हैं। गांधी जी ने परम्परागत भारतीय समाज व्यवस्था के आधारभूत मूल्यों स्वधर्म पालन ,अधिकार की जगह कर्तव्य की प्रधानता,स्वराज स्वायत्ता आदि को मौलिक सिद्वान्द्व के रुप में स्वीकार किया। गांधीजी के अनूसार प्राचीन समाज व्यवस्था श्रेणीगत स्तरीय,उॅच नीच,छुआ छूत,शोषण व अन्याय पूर्ण व्यवस्था नहीं थी । क्योंकि यदि ऐसा होता तो यह सभ्यता उॅचे शिखर पर नहीं पॅहुच पाती और न ही आज तक जीवित रहती (3) विश्व की कितनी ही सभ्यतायें काल के गर्त में विलीन हो गई हैं।

जबकि भारतीय सभ्यता औंर संस्कृति के पक्षधर होने के कारण गांधी जी वर्णाश्रम व्यवस्था को सर्वोत्तम सामाजिक व्यवस्था मानते थे। जो विकृत और दूषित नहीं थी बल्कि वे इसे वैदिक मानते थे जिसका तात्पर्य

व्यवसायमूलक विभाजन पर आधारित सामाजिक सगंठन रहा।(4) गांधी जी अस्पृश्यता को पाप मानते थे।उनका मानना था कि हिंन्दू समाज पाप के प्रायश्चित अधिक सरलता से करेगा। अस्पृश्यता को समाप्त करना आवश्यक हैं, अन्यथा हिन्दू धर्म का विनाश हो जायेगा। (5) इसलिए 16 अगस्त 1932 को ब्रिटिश सरकार ने कम्युनल अवार्ड की घोषणा की। जिसमें दलित जातियो के लिए प्रांतीय विधायको में पृथक निवाचक मण्डल की व्यवस्था की गई हैं,और उन्हें दोहरा मतदान का अधिकार

दिया गया।(6) इसके विरोध में गांधीजी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाया तथा वे 4 जनवरी को बन्दी बना लिए गए। कम्युनल अवार्ड के विरोध में गांधी जी को विश्वास था कि पृथक निवार्चन मान लेने से हिन्दू समाज के दो टुकड़ें हो जायेगे और लोकतंत्र तथा राष्ट्रीय एकता के लिए घातक सिद्व होगा। गांधी जी ने आमरण अनशन करने का निश्चय किया । (7) गांधी जी को दूरदर्शी होने के कारण ज्ञात था कि पृथक निवार्चक मडंल का अर्थ होगा दलितो का विखंडन और उनका विनाश क्योंकि इन वर्गो का मसला मुख्यत नैतिक और धार्मिक हैं। इसका विरोध करने के पीछे कुछ कारण हैं.–

1 गांधी जी का मानना था कि सिख और मुसलमान संगठित थे जबकि दलित संगठित नहीं थे।
2 गांधी जी उन्हें सभी मौलिक अधिकार प्रदान किये जाने के पक्षधर रहे लेकिन उनका मानना था कि पृथक निवार्चक मडंल उन्हें सदैव अछूत बनाये रखेगा और उन्हें सदैव अछूत बनाये रखेगा। आवश्यकता हैं अश्पृश्यता को समाप्त करने की,न कि हिन्दुओ को अलग रखने की।
3 गांधी जी को विश्वास था कि पृथक निवार्चक मान लेने से हिन्दू समाज के दो टुकड़ें हो जायेगे और लोकतन्त्र तथा राष्ट्रीय एकता के लिए यह घातक होगा । (8) गांधी जी ने 20 सितम्बर 1932 को अपना आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया जो अत्यन्त संकट की घड़ी थी। गांधी जी की तबीयत दिन प्रतिदिन खराब होती जा रही थी। इस गतिरोध को समाप्त करने के लिए पं मदन मोहन मालवीय जी के नेतृत्व में देश के सभी बडें नेताओ ने 19 सितम्बर 1929 को मुम्बई में बैठक करने का प्रस्ताव रखा इसमे महादेव देसाई,श्रीदेवी दास,श्रीमती कस्तूरबा गांधी,श्रीमती सरोजनी नायडू,श्री राजगोपालचारी,श्री घनश्याम दास बिरला शामिल रहें। परिणाम पूना पैक्ट समझौते के रुप में सामने आया जिसमें दलितो का 78 सीटो के स्थान पर 148 के प्रांतीय विधायक में मिली और दोहरे मतदान प्रणाली को अपना लिया और पृथक निर्वाचन मडंल को समाप्त कर दिया इसके अतिरिक्त अन्य सुविधायें दलितों को प्रदान की गई। और अनेक सामाजिक प्रतिबंध को समाप्त करने के बीड़ा उठाया गया। गांधी जी ने हिन्दू समाज से अस्पृश्यता उन्मूलन को शपथ ली जिसमें व्यवहारिक रुप में लागू भी किया और जिसे स्वंतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात कानूनी रुप प्रदान किया गया और गांधीजी ने यह भी कहा कि यदि संर्कीण अयोग्यताओं को हिन्दूओं द्वारा दूर नही किया गया तो वे अनशन करेगे। पूना पैक्ट के बाद अछूतो की समस्या को न केवल प्रमुखता मिली बल्कि अस्पृश्यता निवारण के लिए काग्रेंस का आन्दोलन व्यापक रुप लेने लगा ।गांधीजी ने अनुभव किया कि अस्पृश्यता की समस्या के प्रति कोई संगठन होना चाहिए।

30 सितम्बर को पुणे मुम्बई में पंड़ित मदन मोहन मालवीय जी की अध्यक्षता में सार्वजनिक सभा हुई इसमें सारे देश के हिंदू नेताओ ने निश्चय किया कि अस्पृश्यता निवारण के उदेश्य हेतु एक अखिल भारतीय अस्पृश्यता विरोध संघ बनाया जाय जिसकी शाखायें पूरे देश में हो और केन्द्र दिल्ली में हो। और इसका उदेद्श्य –

1 सभी सार्वजनिक कुएं धर्मशालाएं सड़के स्कूल श्मशानघाट इत्यादि दलित वर्गो के लिए खुले घोषित कर दिए जाए।

2 सार्वजनिक मंदिर उनके लिए खोल दिए जाए बशर्ते कि क और ख के सम्बध में जबरजस्ती का प्रयोग न किया जाये बल्कि शान्तिर्पूवक समझाने का प्रयत्न किया जाये। इस संस्था का नाम बदलकर हरिजन सेवक संघ रखा गया जिसका मूल स्वरुप स्वंम गांधी जी ने तैयार किया । (9) गांधीजी ने हरिजन आन्दोलन को व्यापक और सक्रिय बनाने की दृष्टि से तीन साप्ताहिक पत्रो का प्रकाशन किया । अग्रेंजी में हरिजन, हिंन्दी में हरिजन सेवक, गुजराती में हरिजन बन्धु ।इन साप्ताहिक पत्रों ने कुछ ही दिनो में यंग इंडिया और नवजीवन का स्थान ग्रहण किया ।हरिजनो में अपना जन्मजात अधिकार प्राप्त करने से साहस पैदा हु.आ.। सवर्णो के विरोध भी कुछ धीरें धीरे कुछ कम होने लगा। गांधी जी की यह बात लोगो के गले उतरने लगे कि– यदि अस्पृश्यता रहेगी तो हिंन्दू धर्म विनाश से बच नही सकता ।

हरिजन सेवक संघ ने अस्पृश्यो के स्वर्णिम विकास व उत्थान के लिए विभिन्न कार्य किये। परिणामस्वरुप स्वंतन्त्र भारत के संविधान में अस्पृश्यो को निषिद्ध ठहराया गया। और अस्प्श्यता अपराध कानून को लागू किया गया। वर्तमान समय में अस्पृश्यता पूरी तरह समाप्त हो गई या गांधीजी का आर्दश समाज स्थापित हो गया यह कहना तो मुश्किल हैं।' ले.किन तीव्र गति से इसमें सुधार हुआ हैं। और भविष्य में निश्चित रुप में अस्पृश्यता समूल रुप सें नष्ट हो जायेगी ऐसा विश्वास किया जा सकता हैं।

इस प्रकार गांधीजी के अथक प्रयासो के परिणामस्वरुप समाज में अस्पृश्यता का वैसा रुप दिखई नही देता हैं। गांधीजी जैसा कहते थे वैसा ही आचरण करते यही विशेषता उनको अन्य चिन्तको से अलग करती हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1 डॉ रामजी सिंह,डॉ धर्मराज यादव –गांधी विचार और सामाजिक रचना '' मिश्रा ट्रेडिग कॉरपोरेश्न'' वाराणसी पृष्ठ 136 से 137
2 पारेख भिक्षु –कलोनियनलिजम ट्रेड़िंग एंड रिफार्म पृष्ठ 2
3 डॉ रामजी सिंह, धर्मराज यादव पूर्वोक्त पृष्ठ 138–139
4 यंग इडिया 6 अक्टूबर 1921 गांधीजी का अग्रेंजी साप्ताहिक विचार पत्र
5 हरिजन सेवा संघ 27 अक्टूबर 1936
6 कूप्पूस्वामी ''सोशल चेंज इडिंया '' –कोर्नाक पबलिकशन प्राईवेट लिमिटड 1975 ,पृष्ठ 21
7 कूप्पूस्वामी पूर्वोक्त पृष्ठ 211 से 212
8 डॉ डी आर जाटव –भारत के आन्दोलन में डॉ अम्बेडकर की भूमिका '' समता साहित्य सदन ''पृष्ठ 5
9 कूप्पूस्वामी पूर्वोक्त पृष्ठ 212

बाबा साहब डॉक्टर अंबेडकर और महिला सशक्तिकरण

डॉ. अजय कुमार
श्रम एवं समाज कल्याण विभाग
वीर कुँवर सिंह विश्वविधलय, आरा

सभ्यता के विकास क्रम में पुरुषों के समान महिलाओं को समान भूमिका रही है, लेकिन कालांतर में सभ्यता के भौतिक व सांस्कृतिक विकासक्रम की प्रक्रिया में महिलाओं को उनके इस योगदान को नकार कर उन्हें घरेलू संसार तक सीमित कर दिया गया। 20वीं सदी के तृतीय दशक में अम्बेडकर ने महिलाओं की सभ्यता और विकास में योगदान को पहचाना और महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए उनके अधिकारों की वकालत शुरू की जो अंतः 26 जनवरी 1950 में स्वतंत्र भारत के संविधान निर्माता के रूप में महिलाओं को 'प्रकृति प्रदत्त' अधिकार को सुनिश्चित कर भारत में सभ्यता के भौतिक विकासक्रम, सांस्कृतिक, सामाजिक व राजनीतिक क्षेत्रें में महिलाओं की योगदान की एक नयी अवधारण प्रस्तुत की। जिसके परिणामस्वरूप भारत जैसे पित्तृसत्तात्मक' सामाजिक व्यवस्था (पुरूष प्रधान समाज) में महिलाओं को जो घरेलू संसार तक सीमित थी वह बाहर निकल कर पुरुषों के समान सभी क्षेत्रों में कदम–से–कदम मिलाकर चल रही हैं।

नवपाषाण काल की शुरूआत के साथ ही मानव समुदाय अब शिकार संग्रह से पशुपालन और कृषि की ओर संक्रमण हुआ जिससे स्थायी जीवन का विकास हुआ, इस भौतिक विकासक्रम में पुरुष के समान महिलाओं ने समान योगदान दिया। भौतिक विकासक्रम की अवस्था में मानव ने 'ताम्रपाषाणिक' 'कृषकग्रामीण' संस्कृति तथा 'कांस्ययुगीन' नगरी हड़प्पा सभ्यता को जन्म दिया। पुरातात्विक साक्ष्यों से पता चलता है कि इन संस्कृतियों में मातृदेवी की उपासना तथा हड़प्पाई समान संभवतः मातृसत्तात्मक समाज था लेकिन समाज में विद्वान, योद्वा, व्यापारी और श्रमिक वर्ग की मौजूदगी थी। यह संस्कृति लगभग 1750 ई.पू. तक जीवित रही और पारिस्थितिक असंतुलन के धीरे–धीरे इसका अवसान होने लगा।

इतिहास में महिलाए

नवपाषाण काल की शुरूआत के साथ ही मानव समुदाय अब शिकार संग्रह से पशुपालन और कृषि की ओर संक्रमण हुआ जिससे स्थायी जीवन का विकास हुआ, इस भौतिक विकासक्रम में पुरुष के समान महिलाओं ने समान योगदान दिया। भौतिक विकासक्रम की अवस्था में मानव ने 'ताम्रपाषाणिक' 'कृषकग्रामीण' संस्कृति तथा 'कांस्ययुगीन' नगरी हड़प्पा सभ्यता को जन्म दिया। पुरातात्विक साक्ष्यों से पता चलता है कि इन संस्कृतियों में मातृदेवी की उपासना तथा हड़प्पाई समाज संभवतः मातृसत्तात्मक समाज था लेकिन समाज में विद्वान, योद्वा, व्यापारी और श्रमिक वर्ग की मौजूदगी थी। यह संस्कृति लगभग 1750 ई.पू. तक जीवित रही और पारिस्थितिक असंतुलन के धीरे–धीरे इसका अवसान होने लगा और इसी संस्कृति के अनेक तत्व उत्तर हड़प्पा संस्कृति में देखने को मिलता है।

लगभग 1500–500 ई.पू. का काल भारतीय इतिहास में वैदिक काल रहा है। इसको वैदिक काल और उत्तर वैदिक काल में बांटा गया है। वैदिक काल जिसमें प्राप्त पुरातात्विक व साहित्यिक स्त्रोतों से यह पता चलता है कि इस काल के समाज में महिलाओं की पुरुषों के समान–समाज में सभी अधिकार प्राप्त थे। सामान्यतः समाज में उनकी स्थिति उच्च थी। लेकिन दूसरी तरफ उत्तर–वैदिक काल आते–आते लोहे की अविष्कार से अर्थव्यवस्था और समाज पर क्रांतिकारी परिवर्तन आया राज्य की उत्पत्ति हुई और प्राचीन हिन्दू विधिनिर्माता मनु ने हिन्दू समाज जाति–सोपान का केन्द्रिय संगठनकारी सिद्वांत 'पुरुष प्रधानता' विचारधारा

से गढ़कर शुद्र और स्त्रियों को वैदिक अनुष्ठानों से वंचित कर दिया। इन वर्गों में साधारणतः महिलाओं को घरेलू संसार तक सीमित कर दिया। अम्बेडकर ने अपने लेख 'द राइज एण्ड काल ऑफ द हिन्दू वूमन' से महिलाओं के स्थिति के गिरावट के लिए इस 'केंद्रीय संगठनकारी' जाति व्यवस्था सिद्धांत को जिम्मेदार ठहराया है। रोमिला थापर ने भी यह माना है कि प्राचीन भारत में महिलाओं की पर्याप्त अधिकार और स्वतंत्रता से लेकर उतनी ही अधीनता की स्थिति उनमें परिवर्तन आते रहे।

औपनिवेशिक काल

मानव सभ्यता को मध्यकालीन बर्बता से निकालने में 15वीं सदी यूरोप में शुरू हुआ। पुनर्जागरण महत्वपूर्ण है। इसके परिणामस्वरूप यूरोप में मानवतावादी चिंतन की एक परंपरा का विकास वैज्ञानिक खोज और औपनिवेशिकरण की प्रक्रिया शुरू हुई। भारत भी इस प्रक्रिया से अछूता नहीं रहा और भारत में औपनिवेशिक दासता का एक नया युग शुरू हुआ जिससे की 'प्राच्यवादी संवाद' शुरू हुआ जिसने भारतीय संस्कृति पर कुठाराघात किया। इसी समय 19वीं सदी के शुरूआत में भारत में नवपश्चात शिक्षा प्राप्त बुद्धिजीवियों ने भारतीय संस्कृति में सुधार के साथ ही 'स्त्री–संवाद' की एक नयी पहल शुरू हुई। 'स्त्री–संवाद' भक्ति संतों तथा स्त्री सूफी संतों जो मध्यकाल में ही शुरू किया था लेकिन औपनिवेशिक स्त्री–संवाद उससे अलग था इसमें पहली बार कन्या शिशु हत्या पर प्रतिबंध, सती प्रथा उन्मुलन, विधवा पुनर्विवाह को कानून द्वारा मान्यता दिलाया गया जो मध्यकाल से प्रगतिशील था। लेकिन यदि हम सूक्ष्मता से इसका अध्ययन करते है तो पाते हैं कि यह 'स्त्री संबंधी संवाद' एक 'सब्जेक्ट ऑफ मैटर' था पर इसके व्यावहारिकरण पर जोर नहीं दिया गया। औपनिवेशिक राज्य ने जो भी कानून बनाये वे पित्तृसत्तावादी परिवार को मान्यता देती थी और स्त्रियों की चयन की स्वतंत्रता को सीमित करती थी। साधारणतः औपनिवेशिक राज्य भी पढ़ी लिखी माताओं से कादार प्रजा बनने की अपेक्षा रखता था।

इसी समय राष्ट्रवादी ने स्त्री को राष्ट्र से जोड़कर उसे 'देवी माँ' के रूप में प्रस्तुत किया जैसा कि जसोधारा वागची ने अपने शोध में दिखलाया है कि मातृत्व की इस विचारधारा ने उनकी शक्ति और सामर्थ्य के बारे में एक मिथक कहकर स्त्रियों से उसकी वास्तविक शक्ति छीन ली और उनको सन्तानोपति की भूमिका तक सीमित कर दिया।' आगे 20वीं सदी के शुरूआत में राष्ट्रीय आन्दोलन और 'स्त्री–संवाद' में एक नया मोड़ आया जब गांधी ने राष्ट्रीय आन्दोलन में महिलाओं को शामिल किया और महिलाओं के लिए आदर्श नारी की अवधारणा पेश की और स्त्रियों को उनकी यौनवृति को नकारकर 'मातृत्व' के बजाय 'बहनापे' 'सिस्टरहुड' की अवधारणा विकसित किया लेकिन गांधी ने स्त्रियों को अपने पतियों की दासिया न बताकर अत्यंत पुण्य आत्मा और परिवार समाज और राज्य के लिए सर्वोच्च बलिदान दे सकने में समर्थ कहा।'

लेकिन दूसरी तरफ इसी समय 'महिला संवाद' को लेकर कुछ शिक्षित महिला तथा ज्योतिबा फूले ने भी उनकी दशा में सुधार को लेकर आन्दोलन चलाये। जैसे ताराबाई शिंदे ने महिला और पुरुष की तुलना तथा पण्डित रमाबाई ने 1887 में 'द हाई कास्ट हिन्दु विमेन' में भारतीय सभ्यता ने महिलाओं की परिस्थतियों के लिए कड़ी आलोचना की तथा महिलाओं को सशक्त के लिए महिला संगठन की स्थापना की। इसी समय फूले ने निम्न जाति की महिलाओं तथा लड़कियों को सशक्त बनाने के लिए स्कूल खोला और महिला सशक्तिकरण पर बल दिया आगे फूले ने इस काम को 20वीं सदी में डॉ. अम्बेडकर ने पूरा किया।

डॉ. अम्बेडकर और महिला

डॉ. अम्बेडकर आधुनिक भारत में 'स्त्रीसमानता' तथा उनके अधिकारों की वकालत 'सशक्तिकरण' करने वाले पुरोधा थे। अम्बेडकर महाराष्ट्र के रत्नगीरी जिसे के महार जाति 'अछूत' से सम्बंध रखने वाले

थे। 1907 में बाम्बे विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने वाले वह पहले 'अछूत' छात्र बने और इसी शैक्षिक दक्षता की वजह से उन्हें कोलम्बिया विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिए छात्रवृति प्राप्त की। इसी सन्दर्भ में प्रो. विवेक कुमार कहते है कि अम्बेडकर ने हजारों सालों से चले आ रहे दलित उच्च शिक्षा विहीनता की लम्बी कड़ी को तोड़ दिया।

अम्बेडकर ने शिक्षा प्राप्त करने के बाद अपने राज्य वापस लौट कर राज्य सरकार की सेवा में लगे और आगे उन्होंने दलितों और महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए राजनीति में उतर पड़े। इसी क्रम में 1920 में अपना पहला साप्ताहिक पत्र 'मूकनायक' की प्रकाशन तथा दलित वर्गों की शिक्षा का प्रसार करने तथा उसके सामाजिक , आर्थिक उत्थान के लिए उन्होंने **'बहिष्कृत हितकारणी सभा'** की स्थापना की। अम्बेडकर मानते थे कि छुआछूत और महिलाओं की अधीनस्थता में काफी करीबी संबंध है और इसी कारण अछूत विरोधी आन्दोलन में डॉ. अम्बेडकर हमेशा से ही महिलाओं को साथ लेकर चलो और उनके अधिकारों की वकालत की। इसी क्रम में 1927 में 'महाड़ सत्याग्रह' जिसमें 500 महिलाओं ने भाग लिया। इस आन्दोलन को मजबूत तथा सामाजिक व्यवस्था से असंतुष्ट अम्बेडकर ने सार्वजनिक तौर पर 'मनुस्मृति' की प्रति जलाई जो एक अन्याय, अनीति की पुस्तक है जिसमें समाज के कुछ वर्ग को अधीनस्थ बना दिया और उन्होंने हिन्दू कानून को पुनः बनाने की मांग की।

20 जुलाई 1942 को नागपुर में आयोजित महिला सम्मेलन को संबोधित करते हुए अम्बेडकर ने महिलाओं को प्रगतिशील बनने, परम्परावाद तथा कल्पनावाद को अपनी प्रगति के रास्ते में बहुत बड़ा बाधक बताया तथा उन्हें प्रथागत आदतों को समाप्त करने की सलाह दी। औपनिवेशिक सत्ता तथा 'देशज गुलामी' के संघर्ष की कड़ी में 29 अगस्त 1947 को अम्बेडकर को स्वतंत्र भारत के संविधान की रचना के लिए प्रारूप समिति का अध्यक्ष चुना गया। अम्बेडकर ने स्वतंत्र भारत के संविधान में व्यापक श्रेणी में नागरिक स्वतंत्रताओं की सुरक्षा की तथा बिना किसी 'पुरुषवादी पूर्वग्रह' के महिलाओं को राजनीतिक सामाजिक व आर्थिक न्याय को सुनिश्चित कर पिछले 2500 वर्षों के चले आ रहे नियोग्ताओं पर लगाम लगायी और उनके अधिकारों को कानूनी मान्तय दी जो आज विकाशील देशों में प्रेरणा का काम कर रहा है।

इसी तरह महिला सशक्तिकरण की दिशा में अम्बेडकर ने 'हिन्दू कोड बिल–महिलाओं का अधिकार' भी महत्वपूर्ण है जिसमें उन्हेंने तलाक, सम्पत्ति के अधिकार की वकालत की। इस बिल पर सदन के अन्दर और बाहर दोनों तरफ विरोध प्रदर्शन हुआ। हिन्दुवादी नेता श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने इस बिल को 'शानदार भारतीय संस्कृति को तोड़ने वाली' बताया। इस बिल के विरोध में बड़ी संख्या में हिन्दू महिलाओं ने भी हिस्सा लिया। महिलाओं का यह विरोध दर्शाता है कि पुरुष वर्चस्व की विचारधारा किस हद तक महिलाओं में व्याप्त था जो महिलाओं पर पित्तृसत्ता के 'बौद्धिक प्रभुत्व' तथा 'बौद्धिक उपनिवेशीकरण' को दर्शाता है। अभी हाल ही में महाराष्ट्र महिला राज्य आयोग की एक सदस्य आशा मिर्जे का यह बयान कि महिला की पोशाक, व्यवहार और अनुचित स्थान पर उपस्थिति ही बलात्कार जैसी प्रवृति को बढ़ावा दे रही है। उसी 'पुरुष बौद्धिक प्रभुत्व' को दर्शाती है।

आज भारतीय समाज अपने पुरुष वर्चस्व की मानसिकता से पूरी तरह नहीं उभर चुका है। आये दिन महिलाओं के साथ हिंसा उत्पीड़न आदि अपराध हो रहा है। दिल्ली और बंगाल को सामुहिक बलात्कार की घटना एक उदाहरण है। 2011 में लैंगिक प्रवृति पर अंतर्राष्ट्रीय पुरुष और लैंगिक समानता सर्वे से पता चलता है थ्क 68 प्रतिशत पुरुष मानते है कि महिलाओं को उनके परिवारों में होने वाली हिंसा को बर्दाश्त करना चाहिए ताकि परिवार बना रहे। जबकि 65 प्रतिशत मानते हैं कि कभी–कभी एक महिला को पीटा जाना चाहिए। यह दर्शाता है कि पुरुषवादी मानसिकता अभी भी किस तरह से समाज में रूढ़ हैं।

यहाँ इंगित करना आवश्यक है कि सामाजिक परिवर्तन एक क्रमिक प्रक्रिया है और 'वर्चस्ववादी' पित्तृसत्तवादी संस्कृति के 'व्यवहार में परिवर्तन' में समय लगता है। 2500 वर्षों की इस संस्कृति को 65 वर्ष में खत्म करने की बात करना एक कपोल कल्पना जैसा होगा। लेकिन फिर भी डॉ. अम्बेडकर के सपनों का सच होना कहा जा सकता है कि भारतीय राजनीति प्रशासन, समाज तथा अर्थव्यवस्था के विभिन्न भागों महत्वपूर्ण पदों पर महिलायें प्रतिस्थित है और पुरुषों के साथ कदम–से–कदम मिलाकर चल रही है। इसी का परिणाम है कि आज भरत में महिलायें, राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, लोकसभा अध्यक्षा, प्रतिपक्ष की नेता आदि जैसे उच्च पदों पर आसीन हुई है।

लेकिन यहाँ ध्यान रखने की आवश्यकता है कि अधिकार अपने आप से पर्याप्त है और संविधान के द्वारा उनकी रक्षा होती, लेकिन वे खुद ही लागू नहीं होते। डॉ. अम्बेडकर का 'लैंगिक समानता' का सपना भविष्य में पूरा होगा जैसे–जैसे महिलायें शिक्षित होंगी और इस अधिकार को प्राप्त करेंगी।

निष्कर्ष

इस प्रकार उक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि अम्बेडकर द्वारा भारतीय सभ्यता और संस्कृति में महिलाओं के 'प्रकृति प्रदत्त' अधिकार की वकालत कर संवैधानिक मान्तय देकर देश की आधी आबादी को भारतीय सभ्यता के भौतिक व सांस्कृतिक विकास में उनके योगदान की एक नयी दिशा तैयार की जो निरंतर जारी है।

सन्दर्भ

1. डॉ. बी.आर. अम्बेडकर (1999) राइज एण्ड फॉल ऑफ द हिन्दु वुमन नयी दिल्ली ब्लुमुन बुक, पृष्ठ 12–17
2. रोमिला थापर (1975). लुकिंग बैंक इन हिस्ट्री, नयी दिल्लीः प्रकाशन विभाग पृ. 7
3. शेखर बंद्योपाध्याय (2007). प्लासी से विभाजन तक, आधुनिक भारत का इतिहास नई दिल्ली, ओरियंट लागमैन , पृ. 419
4. जसोधारा वागची (1990). रिप्रजेंटिंग नेशनलिज्मः आइडियोलॉजी ऑफ मदरलैण्ड इन कलोनियल बंगाल, ई.पी. डब्लू. पृ. 65–66
5. शेखर बंद्योपाध्याय (2007). प्लासी से विभाजन, आधुनिक भारत का इतिहास, नई दिल्लीः ओरियंट लांगमैन, पृ. 423
6. विवेक कुमार (2013). स्पीच आन अम्बेडकर, जर्नी टू कोलम्बिया।
7. चितरंजन मलिक (2013). डॉ. अम्बेडकर और महिला सशक्तिकरण, नयी दिल्ली, बर्ड फोकस, पृ. 74
8. वैशाली धानरीजप (2012) . डॉ. अम्बेडकर इफेक्ट्स फार बूमन इम्पावरमैंट एण्ड स्टेंट्स ऑफ बुमन इन सोसाईटी म्प्दै टवसण 1 ;पपपद्ध ए पृ. 112
9. जानकी नायर (1994). ऑन द क्युश्चन ऑफ एजेंसी इन इंडिया फेमिनिस्ट हिस्टोरियोग्रफी जेंडर एण्ड हिस्ट्री, पृ. 89
10. वसुन्धरा श्रीनेत (2014). गुड ला बैड इम्पीमिन्टेशन द हिन्दु 1 फरवरी

एक बहुमुखी व्यक्तित्व : डॉ0 भीमरॉव अम्बेडकर

डॉ. बृजेश पाण्डेय
असिस्टेन्ट प्रोफेसर
श्री अ.क.पी.जी. कॉलेज, वाराणसी

दाहिने हाथ की उठी हुई अंगुली एक विशेष परिधान, चेहरे पर मोटे चश्में की तुलना में 'दृढ़ता' कुछ ज्यादा दिखाई देती हुई– प्रस्तर की बनी मूर्ति–संसद भवन, संविधान प्रकोष्ठ, मलिन बस्तियों का खुला प्रांगण का विशिष्टतम विशिष्ट लोगों के बड़े–बड़े तैल चित्रों के साथ लगी हुई अलग से जानी जाती है– अपनी एक अलग मौलिकता के लिये। अपने निःतत्व को जन सामान्य ही नहीं सत्ता के गलियारों में स्थापित करती एक बोलती हुई सी प्रस्तर प्रतिमा। यह सम्पूर्ण व्यक्तित्व है उस महामानव का जिसे संविधान निर्माता के रुप में जाना जाता है वह है बाबा भीमरॉव अम्बेडकर।

अम्बेडकर को जानने वाले अधिकाधिक हैं लेकिन वास्तविक रुप में समझने वालों की संख्या गिनी चुनी है क्योंकि अम्बेडकर ज्ञान के उस कुण्ड के समान है जिसका सोता बहुत गहरे बहुत नीचे उस जड़ में समाया हुआ है जहां सृजन के बीज पनपते हैं। डॉ0 भीमरॉव अम्बेडकर एक वकील, एक प्रोफेसर, शिक्षाविद, समाज सुधारक, संसद सदस्य, संविधान निर्माता, स्वतंत्रता सेनानी, राजनीतिक दलों के जन्मदाता बौद्ध धर्म के समर्थक एवं पुनरुद्धारक सभी कुछ थे।

डॉ0 अम्बेडकर का प्रारम्भिक जीवन :–

14 अप्रैल 1891 में जन्में डॉ0 अम्बेडकर महाराष्ट्र के एक महार अछूत जाति के एक निर्धन परिवार के थे, निर्धन तथा अछूत होने के नाते, उन्हें विद्यार्थी जीवन से लेकर मृत्यु तक अनेक यातनाएं सहनी पड़ी और निरन्तर कठिनाईयों का सामना करना पड़ा फिर भी विद्यानुराग उनके जीवन का एक अंग बन गया, वह एक मेघावी छात्र थे। इसलिए उन्हें सरकार से छात्रवृत्तिया भी उपलब्ध हुई जिसके कारण वह देश–विदेश के शिक्षा जगत में उच्च स्थान प्राप्त कर सकने में सफल हुए।

बम्बई के एलफिन्सटन कॉलेज से बी0ए0 की परीक्षा पास की और अमेरिका के कोलम्बिया विश्वविद्यालय से एम0ए0 तथा पी–एच0डी0 की डिग्रियां हासिल की, लंदन विश्वविद्यालय से एम0एससी0, डी0एस0सी0 की डिग्रियां ली और ग्रेज–इन (लंदन) से बार–एट–लॉ की उपाधि प्राप्त की, जर्मनी के बान विश्वविद्यालय में भी उन्होंने अध्ययन किया बाद में कोलम्बिया विश्वविद्यालय ने उन्हें एल0एल0डी0 की उपाधि से सम्मानित किया क्योंकि उन्होंने भारतीय निर्माण की प्रक्रिया में मुख्य भूमिका अदा की थी। डॉ0 अम्बेडकर को आज भारतीय संविधान का जनक कहा जाता है। उनकी शैक्षणिक योग्यता तथा बौद्धिक क्षमता को देखते हुए आसमानिया विश्वविद्यालय ने भी उन्हें डी0लिट0 की उपाधि से विभूषित किया। इस प्रकार अनेक उच्च डिग्रियां प्राप्त कर आज की शिक्षा जगत में प्रेरणा के सतत् स्रोत बने हुए हैं। बचपन में अम्बेडकर ने सामान्य जीवन नहीं जिया। सामान्य बालक के विशेषाधिकारों को वह प्राप्त नहीं कर सके। वह हर स्थान पर आ–जा नहीं सकते थे, मन्दिर में प्रवेश तो कल्पना की बात थी। एक बार स्कूल जाते समय घनघोर वर्षा में वे एक मकान की दिवार की ओट में खड़े हो गये किन्तु शीघ्र ही वहा से उन्हें ढकेल कर अलग कर दिया गया और वे वर्षा के पानी में भीगते चले गये, क्योंकि वह मकान किसी ब्राह्मण का था। वह सभी दंश मात्र इसलिए थे क्योंकि वे अछूत थे और जन्मना शूद्र जाति के थे, सामाजिक अन्याय व दुर्भावों सर्वदा उन्होंने भोगा। बालक भीम का हृदय इस अकुलाहट में द्रवित हो जाता कि आखिर वे उस कृत्य की सजा क्यों वहन करें जिसे उन्होंने किया ही नहीं। जन्म तो ईश्वर प्रदत्त है – समूह का निर्धारण

भी मनुष्य निर्मित नहीं– सभी सामान्य ढंग में एक प्रकार का रुप से जन्में होते हैं तो फिर परिवारों और कुल की भिन्नता प्राप्त करने में उस शिशु का क्या दोष? यह कैसी यातना जो जीवन पर्यन्त की नहीं मृत्यु पर्यन्त तक अपने नाम से चिपकी रहती है। समय बीतता गया और बालक अम्बेडकर ने धीरे–धीरे यह जाना कि यह सारे दंश मनुष्यों के बनाये हुए हैं। इन बेड़ियों का निर्माण उस हाथों ने किया है जो जन्मना उच्च जाति और वर्ण के व्यक्ति– जिन्होंने बिना किसी परिश्रम के समाज में सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर लिया है – यह कैसा अन्याय, यह कैसी विडम्बना यातना का यह कैसा घृणित स्वरुप जिसमें समाज का एक बड़ा वर्ग जीने के लिए बाध्य है?

डॉ0 अम्बेडकर के व्यक्तित्व के विविध आयाम :–

शिक्षा :

डॉ0 अम्बेडकर ने अपना जीवन एक प्रोफेसर के रुप में प्रारम्भ किया और बम्बई लॉ कॉलेज के प्रिन्सिपल भी रहे। चूँकि वह समाजसेवा करना चाहते थे, इसलिए उन्होनें वकालत को अच्छा समझा जिससे वह दलित अछूत जनता के सम्पर्क में आये। वह दुःखी पीड़ित लोगों का सामाजिक उद्धार चाहते थे। उनके अथक संघर्ष के फलस्वरुप करोडों अदूत सूत्रों को सामाजिक एवं धार्मिक अधिकार प्राप्त हुए और उन्होंने उन्हें मानववादी दृष्टिकोण प्रदान किया। अम्बेडकर दलित वर्गों के मार्ग दर्शक बने और उन्होंने यह नारा दिया कि 'शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो' ताकि उन्हें सम्मान जनक जीवन स्तर सुलभ हो। डॉ0 साहब का यह निश्चित मत था कि विद्या ही उनके अंधकार एवं अज्ञान को मिटा सकती है, क्योंकि शिक्षा में अपार शक्ति होती है। दलितों के उत्थान के लिए अम्बेडकर शिक्षा को एक तेज कुल्हाड़ी के समान मानते थे। उन्होंने दलित वर्ग में यह आह्वाहन किया था कि आप सभी लोग पहले शिक्षित हो – शिक्षा ही आप में उस तर्क शक्ति का सृजन करेगी। जो जीवन के प्रत्येक पक्ष को अबाध और गतिमान बनायेगी, तभी दलितों का कल्याण हो सकता है।

ब्राह्मणवाद :

डॉ0 अम्बेडकर ने ब्राह्मणों तथा बाह्मणवाद में स्पष्ट भेद रखा ताकि ब्राह्मण लोग यह न समझ बैठें कि ब्राह्मणों के विरोधी थे। उन्होंने कहा कि यह मानना है कि सभी ब्राह्मण अछूतों के शत्रु हैं, बिल्कुल गलत है, यह तो उन्हीं लोगों से घृणा करते हैं जिसमें ब्राह्मणवाद की भावना ऊंच–नीच, जाति भेद हैं, क्योकि ऐसी ही बातें सामाजिक अन्याय तथा असामनता को बढ़ावा देती है। क्योकि ऐसी ही बातें सामाजिक अन्याय तथा असमानता को बढ़ावा देती है। अतएव उनकी दृष्टि में, एक गैर–ब्राह्मण, यदि उसमें ऊंच–नीच की भावनाएं हैं तो उतना ही घृणित है जितना कि कोई ब्राह्मण जिसके व्यवहार में भी कोई ऊंच–नीच की भावना है। इस प्रकार डॉ0 अम्बेडकर की दृष्टि में ब्राह्मण तथा गैर–ब्राह्मण का भेद नहीं था, बल्कि जिसमें ब्राह्मणवाद की भावना तथा व्यवहार है, यहीं समाज का शत्रु है, भले ही वह कोई दलित क्यों न हो। एक और दृष्टि से डॉ0 साहेब ने कहा कि ब्राह्मणवाद, समाजवाद तथा जनतंत्र का घोर शत्रु है, क्योंकि ऊंच–नीच की भावना जहां हो वहां समाजवादी समाज की स्थापना करना असम्भव है। ब्राह्मणवाद न केवल सामाजिक अधिकारों का निषेध करता है, बल्कि समान आर्थिक अवसरों का भी निषेध करता है। इसलिये ब्राह्मणवाद सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक दृष्टि स आवंछनीय विचारधारा है।

नारी :

डॉ0 अम्बेडकर ने महिलाओं को समाज–रचना की एक बड़ी ताकत के रुप में पहचाना। उन्होंने न सिर्फ कोशिश की, बल्कि उसमें सफल भी हुए। अन्ततः संविधान में किसी भेद को तिलांजलि दे दी गई। स्त्रियों को उनके जन्म के साथ समाज में सम्मानजनक दर्जा दिलाने हेतु डॉ0 अम्बेडकर ने स्वतंत्र भारत के प्रथम विधि मंत्री के रुप में प्रचुर प्रयास किये। उन्होंने हिन्दू कोड बिल पर संसद और समाज में अपने

व्याख्यान तथा आग उगलते लेखों द्वारा अपना दृष्टिकोण पूरी तार्किकता के साथ रखा। नारी उद्धार की बात लोगों के गले उतारने के लिए उन्होंने स्वयं अपने जीवन में भी अनेक चुनौतियां झेली। संविधान के अनुच्छेद 14 से 16 उनकी दृढ़ इच्छा–शक्ति के जीवन प्रमाण है।

दलित वर्ग :

भारतीय समाज का सबसे बड़ा कलंक अस्पृश्यता अथवा छुआछूत की प्रथा रही है। जोकि वर्ग अथवा जाति प्रथा के पतन का परिणाम है। भारतीय संविधान द्वारा कानूनी तौर पर इस कलंकित प्रथा को समाप्त कर दिया है। इसमें हमारे संविधान के जनक बाबा साहेब डॉ0 अम्बेडकर की निर्णायक भूमिका रही है। वस्तुतः डॉ0 अम्बेडकर भारतीय समाज के शोषित–दलित वर्ग के सबसे सशक्त प्रावक्ता एवं हिमायती रहे हैं। वह जीवनपर्यन्त सभी प्रकार की सामाजिक विषमताओं के विरुद्ध लड़ते रहे। सामाजिक न्याय के लिए तथा दलित और दमित मानवता की स्वतंत्रता के लिए उन्होंने संघर्ष छेड दिया था। दलितों के उद्धार के लिए लड़ा गया धर्म युद्ध ही बाबासाहेब की सबसे बड़ी विरासत है।

विधानविद् :

डॉ0 अम्बेडकर एक कानूनी मरमज्ञ थे। उन्हें संविधान प्रारुप समिति का अध्यक्ष बनाया गया। इसलिए वह स्वतंत्र भारत के संविधान के मुख्य निर्माता के रुप में प्रख्यात हुए। भारत की प्रथम मंत्री परिषद में वह विधि मंत्री बनें तथा श्रम मंत्रालय भी उन्होंने संभाला। जवाहरलाल नेहरु उन्हें 'ज्वैल ऑफ द कैविनेट' कहा करते थे, क्योंकि वह सबसे योग्य एवं सक्षम व्यक्ति थे। इसके पूर्व वह वॉइसराय की कार्यकारिणी परिषद् के सदस्य थे। फलतः डॉ0 अम्बेडकर ने न केवल सरकारी क्षेत्र में अनेक पदों को सुशोभित किया, बल्कि राजनीतिक क्षेत्र में भी अनेक सभाओं के संयोजक तथा अध्यक्ष रहे।

मानवाधिकार :

डॉ0 अम्बेडकर महानता तथा मानव सेवा के उच्च शिखर की ओर बढ़ते गये, वैसे–वैसे उनका जीवन लक्ष्यवद्ध और व्यस्त होता गया। परिवार में आर्थिक कठिनाइयों के बादल छाये रहते थे, क्योंकि यह धन लोलुपता से दूर समाज सेवा में अधिक लीन रहने लगे थे। उनकी धर्मपत्नी रमाबाई ने आर्थिक अभाव को महसूस नहीं होने दिया, क्योंकि जो कुछ धन उन्हें डॉ0 अम्बेडकर से मिलता था, उसी में वह परिवार का कामकाज चला लिया करती थी। रामाबाई धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थी, बड़ी सुशील एवं शांत स्वभाव से जीवन–यापन करना उनकी विशेषता थी। यही कारण है कि डॉ0 अम्बेडकर के महान बनने में उनकी अहम् भूमिका रही।

निष्कर्षतः कहा कि होगा कि डॉ0 अम्बेडकर जीवन के हर मोड़ पर संधर्ष करते रहें, उनका संधर्ष यह प्रमाणित करता है कि प्रत्येक नर–नारी को गतिशील तथा प्रगतिशील बने रहना चाहिए ताकि समाज को भी जिस परिवर्तन की आवश्यकता है वह रुके नहीं।

संदर्भ गन्थ –

1. कास्ट्रम इन इण्डिया देअर मेकेनिज्म, जीनिसिस एण्ड डिवेलपमेन्ट (एक शोधपूर्ण आलेख), इण्डियन एन्टीक्वरी पत्रिका खण्ड XXVI, 1917.
2. मि0 गांधी एण्ड द इमेन्सीपेशन ऑफ द अण्टवेकिल्स, (प्रथम संस्करण 'द अण्टवेकिलस एण्ड द इण्डियन कांन्सटीट्यूशन नाम से प्रकाशित हुआ) थेकर एण्ड कम्पनी बम्बई, 1943
3. हू वर द शूद्राज?, थेकर एण्ड कम्पनी बम्बई, 1946
4. स्टेट्स एण्ड मॉइनारिटिज, थेकर एण्ड कम्पनी बम्बई, 1947
5. व्हाई आई लाइफ बुद्धिज्म? (एक वार्ता) बी.बी.सी. लन्दन द्वारा प्रसारित मई 1956.

6. प्रास्पेक्ट्स ऑफ पार्लियामेन्ट्री डिमाक्रेसी इन इण्डिया एक वार्ता) बी.बी.सी. लन्दन द्वारा प्रसारित 20 मई 1956.
7. डॉ0 बाबासाहेब अम्बेडकर–रायटिंग्स एण्ड सर्विसेज खण्ड 1–15, महाराष्ट्र सरकार द्वारा प्रकाशित, बम्बई, 1979–1997 जाटव आर0डी0 : डॉ0 अम्बेडकर एवं प्रखर विद्राली, ए0बी0डी0 पब्लिशर्स, नटराज नगर, जयपुर–322015 (राजस्थान)

ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानान्तरित होने वाले परिवारों के महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक गतिशीलता : एक समाजशास्त्री अध्ययन

डॉ0 प्रतिमा श्रीवास्तव
असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग,
सुधाकर महिला पी0जी0 कॉलेज, वाराणसी

ग्रामीण क्षेत्र के परिवार अधिकांशतः संयुक्त होते हैं, जिनमें स्त्रियों की स्थिति ग्रामीण सांस्कृतिक मूल्य एवं मान्यताओं के अनुसार निर्धारित रहती हैं। पारिवारिक संरचना में स्त्रियों की भूमिका प्रस्थिति का केन्द्रीय स्थान होता है। संयुक्त परिवार में महिलाएँ अपने से बड़ों के सामने परिहार सम्बन्धों का प्रयोग करती हैं, घर के सारे काम तथा परिवार के मुखिया के आदेशों का पालन करना पड़ता है।

स्थानान्तरण के पश्चात् स्त्री अपने पति और बच्चों के साथ नगरों में आकर रहने लगती हैं, जिससे उसकी भूमिका, प्रस्थिति में परिवर्तन आता है क्योंकि उसे नगरीय सांस्कृतिक मूल्यों एवं मान्यताओं के अनुसार समायोजन करना पड़ता है, जिससे उसे प्रारम्भ में कुछ कठिनाईयाँ अवश्य प्रारम्भ होती हैं, किन्तु शनैः–शनैः वह एक सह–संस्कृति में जीवन गुजारने लगती हैं, क्योंकि वह पूर्णरूपेण ग्रामीण सांस्कृतिक मूल्यों एवं मान्यताओं का त्याग नहीं कर पाती हैं।

नगरों में आने के पश्चात् स्त्रियों की स्थिति में कुछ सुधार अवश्य हुआ है, उसकी स्थिति परिवार में उच्च हो जाती है, अब वह स्वयं निर्णय लेने लगती है तथा गृहस्थी के कार्य के साथ–साथ बाहर के कार्यों में भी रुचि लेने लगती है। यह परिवर्तन परिवार की लघु इकाई (पारिवारिक समायोजन, वैवाहिक जीवन, सामाजिक जीवन) पर होता है। जब बहुत से परिवारों में स्थानान्तरण के पश्चात् परिवर्तन आने लगता है तो वो सामाजिक परिवर्तन के प्रवृत्ति के परिचायक होते हैं।

भारतीय नारी के परम्परागत पार्श्वचित्र 'परिवार' में मीमांस में इस प्रकार दिया गया है। शास्त्रकारों ने सम्भवतः तीन कारणों से नारी को अस्वतंत्र बनाया है– पहला कारण, नारी के अबला होने के कारण कुदृष्टि का शिकार होने पर उसकी आत्मरक्षा में असमर्थता थी। महाभारत के मत में, ''पतिहीनता स्त्री की सब लोग वैसे ही कामना करते हैं जैसे पक्षी पृथ्वी पर हुए माँस खण्ड से करते हैं, ऐसे दुर्जनों से स्त्री के सतीत्व व सम्मान की रक्षा के लिए सदैव उसे किसी पुरुष के संरक्षण में देना वांछनीय समझा गया।'' दूसरा कारण, स्त्री आर्थिक अवलम्बन और स्वयं जीविकोपार्जन करने की अक्षमता थी, पति ही पत्नी का प्रधान आर्थिक आश्रय था। तीसरा कारण यह था कि, पुरुषों की अपेक्षा सतीत्व बंधन इसलिए आवश्यक था कि उसके न रहने के कारण पर वर्णसंकरता आदि अनेक दोषों की अधिक सम्भावनाएँ थीं।

धर्मशास्त्रों में इनका बहुत ही विस्तृत अध्ययन किया गया है, इन्हें देखने से पहले भार्या के सामान्य कर्त्तव्यों का संक्षिप्त उल्लेख किया जायेगा। मनु के अनुसार, ''चीजें साफ–सुथरी रखें, अपव्ययी न हों।'' याज्ञवल्क्य ने इने अतिरिक्त पति का प्रिय कार्य करना, सास–श्वसुर की चरण वन्दना करना, उत्तम आचरण और संयम उसके प्रधान गुण बताये हैं।

स्थानान्तरण के पश्चात् इस पार्श्वचित्र की तुलना में भारतीय समाज में स्त्रियों की शिक्षा समानता कार्योजन के कारण कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे हैं जैसे स्त्रियों का कामकाजी होना, कामकाजी

महिलाओं का नगरों में रहना, स्त्रियों का आर्थिक रूप से स्वतंत्र होना, महत्वपूर्ण पारिवारिक निर्णयों में भाग लेना, अन्तर्जातीय और प्रेम–विवाह के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन होना, वैवाहिक एवं पारिवारिक जीवन के प्रति और बच्चों के पालन–पोषण में उपेक्षित होना अपनी शक्तियत्ता एवं सत्ता के प्रति जागरुक होना आदि।

प्रस्तुत शोध में यह ज्ञात करने का प्रयास किया गया है कि ग्रामीण क्षेत्रों से स्थानान्तरित परिवार के महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक गतिशीलता क्या है, इस दिशा में किया गया एक प्रयत्न होगा।

शोध प्रारूप :

प्रस्तुत शोध प्रपत्र ग्रामीण क्षेत्रों से नगर में स्थानान्तरित होने वाले परिवारों के महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक गतिशीलता : वाराणसी महानगर पर आधारित एक समाजशास्त्रीय अध्ययन है। प्रस्तुत अध्ययन में अन्वेषणात्मक अध्ययन प्रारूप का चयन किया गया है। इसके अन्तर्गत तथ्यों की सूक्ष्मता एवं उसकी यथार्थता को बनाये रखने के लिए विवरणात्मक अध्ययन प्रारूप का चयन किया गया है। अध्ययन के लिए वाराणसी महानगर में निवार कर रहे जौनपुर, चन्दौली, गाजीपुर, बलिया, मिर्जापुर, ज्ञानपुर से स्थानान्तरित 300 सूचनादात्रियों को निवास की अवधि को ध्यान में रखते हुए संस्तरित अनुभाग निदर्श प्रणाली से लिया गया है। प्राथमिक तथ्यों का संकलन साक्षात्कार अनुसूची द्वारा किया गया है। द्वैतीयक तथ्यों के संकलन हेतु भारतीय जनरिपोर्ट वाराणसी, सेन्सस, हैण्डबुक, जिलागजेटियर तथा कुछ पूर्ववर्ती शोध प्रतिवेदनों का सहारा लिया गया है।

शोध का उद्देश्य :

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों से स्थानान्तरित परिवार के महिलाओं की सामाजिक आर्थिक गतिशीलता के अन्तर्गत स्थानान्तरित महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति, व्यवसायिक स्थिति, सामाजिक जागरुकता, राजनीतिक चेतना, सामाजिक सहभागिता, नगरीय समुदाय से अन्तःक्रिया एवं परिवेश का प्रभाव, निवास करने वाली महिलाओं की जीवन–शैली, जीवन–मूल्यों एवं अभिवृत्ति का प्रतिमान ज्ञात करना है।

सारिणी संख्या 1

सूचनादात्रियों की शैक्षणिक योग्यता

शैक्षणिक योग्यता	आवृत्ति	प्रतिशत
हाईस्कूल	8	2.67
इण्टर	42	14.00
स्नातक	187	62.33
स्नातकोत्तर	48	16.00
पी–एच0डी0	15	5.00
योग	300	100.00

शिक्षा द्वारा व्यक्ति का विकास होता है और व्यक्ति के जीवन में उसके शैक्षणिक जीवन की उपलब्धि होती है। अध्ययन समग्र के सूचनादात्रियों में से 2.67 प्रतिशत सूचनादात्रियों का शैक्षणिक स्तर हाईस्कूल है, 14.00 प्रतिशत इण्टर, 62.33 प्रतिशत स्नातक, 16.00 प्रतिशत स्नातकोत्तर व 5.00 प्रतिशत सूचनादात्रियों का शैक्षणिक स्तर पी–एच0डी0 है।

सारिणी संख्या 2

सूचनादात्रियों की व्यवसायिक स्थिति

व्यवसायिक स्थिति	आवृत्ति	प्रतिशत
सरकारी	133	44.33
गैर सरकारी	167	55.67
योग	300	100.00

व्यक्ति के जीवन–यापन हेतु धन की आवश्यकता होती है उपर्युक्त सारिणी से स्पष्ट होता है कि 44. 33 प्रतिशत सूचनादात्रियाँ सरकारी व्यवसाय में संलग्न हैं जबकि 55.67 प्रतिशत सूचनादात्रियाँ गैरसरकारी व्यवसाय में संलग्न हैं।

सारिणी संख्या 3

सूचनादात्रियों की मासिक आय

व्यवसायिक स्थिति	आवृत्ति	प्रतिशत
1000&5000	96	32.00
5001&10000	132	44.00
10001&15000	63	21.00
15000 से अधिक	9	3.00
योग	300	100.00

सूचनादात्रियों की मासिक आय उनके सामाजिक–आर्थिक स्तर के निर्धारण में सहायक है, उपरोक्त सारिणी से स्पष्ट होता है कि 32.00 प्रतिशत सूचनादात्रियों की मासिक आय 1000–5000 के बीच है, 44.00 प्रतिशत सूचनादात्रियों की मासिक आय 5001–10000 के बीच है, 21.00 प्रतिशत सूचनादात्रियों की मासिक आय 10001 से 15000 के बीच है, तथा 3.00 प्रतिशत सूचनादात्रियों की मासिक आय 15000 से अधिक है।

सारिणी संख्या 4

सूचनादात्री एवं नगरीय जीवन शैली के अन्तर्गत प्रस्थिति में आया परिवर्तन

परिवर्तन	आवृत्ति	प्रतिशत
शैक्षिक प्रस्थित में	92	30.67
पारिवारिक प्रस्थिति में	53	17.67
आर्थिक प्रस्थिति में	28	9.33
सामाजिक प्रस्थिति में	33	11.00
सभी में	94	31.33
योग	300	100.00

स्थानान्तरण के पश्चात् नगरीय जीवन–शैली के अन्तर्गत सूचनादात्रियों की विभिन्न प्रस्थितियों में परिवर्तन परिलक्षित होते हैं, उपरोक्त सारिणी से स्पष्ट होता है कि नगरीय जीवन शैली के अन्तर्गत 30.67 प्रतिशत सूचनादात्रियों के शैक्षणिक प्रस्थिति में परिवर्तन आया है 17.67 प्रतिशत सूचनादात्रियों के पारिवारिक प्रस्थिति में परिवर्तन आया है, 9.33 प्रतिशत सूचनादात्रियों के पारिवारिक प्रस्थिति में परिवर्तन आया है, 11.00 प्रतिशत सूचनादात्रियों के सामाजिक प्रस्थिति में परिवर्तन आया है जबकि 31.33 प्रतिशत सूचनादात्रियों के सभी प्रस्थितियों में परिवर्तन आया है।

सारिणी संख्या 5

प्राप्त मताधिकार का प्रयोग एवं सूचनादात्रियाँ

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
अपनी इच्छा से	257	85.67
परिवार के दबाव से	43	14.33
योग	300	100.00

भारतीय समाज की राजनीतिक व्यवस्था लोकतंत्र पर आधारित है जिसमें संविधान द्वारा महिलाओं को मताधिकार प्रदान किया गया है उपरोक्त सारिणी से स्पष्ट होता है कि 85.67 प्रतिशत सूचनादात्रियाँ प्राप्त मताधिकार का प्रयोग अपनी इच्छा से करती हैं जबकि 14.33 प्रतिशत सूचनादात्रियाँ प्राप्त मताधिकार का प्रयोग परिवार के दबाव से करती हैं।

सारिणी संख्या 6

वाराणसी की सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन पद्धति के साथ समायोजन एवं सूचनादात्रियाँ

परिवर्तन	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	196	65.33
नहीं	23	7.67
कह नहीं सकते	81	27.00
योग	300	100.00

मूल स्थान से स्थानान्तरण के पश्चात् सूचनादात्रियों को वाराणसी नगर की सामाजिक– सांस्कृतिक जीवन पद्धतियों के साथ समायोजन स्थापित करने की समस्या आती है। उपरोक्त सारिणी से स्पष्ट होता है कि 65.33 प्रतिशत सूचनादात्रियाँ वाराणसी की सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन पद्धतियों से समायोजन कर चुकी हैं 7.67 प्रतिशत वाराणसी की सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन पद्धतियों से समायोजन नहीं कर पाई हैं जबकि 27.00 प्रतिशत सूचनादात्रियाँ कोई विचार नहीं व्यक्त की हैं।

शोध की उपलब्धियाँ :

वर्तमान अध्ययन में ग्रामीण क्षेत्रों से स्थानान्तरित परिवार के महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक, राजनैतिक, पारिवारिक आदि स्थितियों में स्थानान्तरण के पश्चात् परिवर्तन परिलक्षित होता है। स्थानान्तरण के पश्चात् सूचनादात्रियों की शैक्षणिक स्थिति में परिवर्तन परिलक्षित होता है। शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् उनमें पारिवारिक, शैक्षणिक, आर्थिक एवं संवैधानिक अधिकारों के प्रति जागरुकता आई है, अधिकांश सूचनादात्रियाँ अपने परिवार की प्रस्थिति सुधारने के लिए नौकरी अथवा किसी व्यवसाय में संलग्न हैं तथा परिवार की अर्थव्यवस्था में अपना योगदान देती हैं। स्थानान्तरण के पश्चात् अधिकांश सूचनादात्रियाँ वाराणसी नगर में आने पर संविधान द्वारा प्रदत्त राजनैतिक अधिकारों के प्रति जागरुक हुई हैं, अधिकांश सूचनादात्रियाँ अपने मताधिकार का प्रयोग अपनी इच्छा से तथा बहुसंख्यक सूचनादात्रियाँ राजनीति से प्रेरित होकर करती हैं, बहुसंख्यक सूचनादात्रियाँ वाराणसी की सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन पद्धतियों से समायोजन कर चुकी हैं। नगरों में स्थानान्तरण के पश्चात् महिलाएँ ग्रामीण मूल्यों, मान्यताओं, रुढ़ियों आदि की जंजीरों को तोड़कर उन मूल्यों से अन्तःक्रिया कर एक नई सहसंस्कृति का निर्माण करती हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1- Alteker, Pushpa : Ghandhi on Women, Centre for Women's Development Studies, New Delhi, 1988.
2- Anand Kulwant : Impact of the changing status of Women Population Growth Unpublished Ph.D. Thesis, Panjub University, Chandigarh, 1970, P 55-88.
3- Ahuja, Ram : The Position of Women in Hindu Civilization, Motilal Banarasi Das, Varanasi, 1938 and 1956.
4- Bogardus : Sociology.

5- Cormak, Margrat : The Hindu Women's (Its Indian Edition) Bombay, Asia Publishing House, 1961.
6- Indra : Status of Women in Ancient India, Bombay, 1951.
7- Joshi, R.V. : Urban Structure in Wester India, Ibid XVIII, No. 2, March, 1956.
8- Pandey, Dr. Sheel Swaroop : Gramin Samajshastra, Samajshastra Vibhag, Kumayun Vishwavidyalaya, Nainital.

❖❖❖

पं0 दीन दयाल उपाध्याय के एकात्ममानववाद की प्रासंगिकता

डॉ. अर्चना सिंह
असि0 प्रो0 राजनीति शास्त्र
महाराज बलवंत सिंह पी0जी0 कॉलेज,
गंगापुर, वाराणसी

भारतीय जनसंघ के संस्थापकों में प्रमुख स्थान रखने वाले पं0 दीनदयाल उपाध्याय राजनीतिज्ञ होने के साथ–साथ एक दार्शनिक समाजशास्त्री एवं अर्थशास्त्री भी थे। पण्डित जी के द्वारा प्रस्तुत दर्शन को एकात्म मानववाद कहा जाता है जिसका उद्देश्य एक ऐसा स्वदेशी सामाजिक एवं आर्थिक मॉडल प्रस्तुत करना था जिसमें मानव की केन्द्रीय भूमिका हो। पण्डित दीनदयाल उपाध्याय जहाँ एक तरफ पश्चिमी पूंजीवादी व्यक्तिवाद और मार्क्सवादी समाजवाद दोनों के विरोधी थे वही वे आधुनिक तकनीक एवं पश्चिम के वैज्ञानिक विकास के समर्थक थे। वे पूंजीवाद एवं समाजवाद के मध्य एक ऐसे मार्ग के पक्षधर थे जिसमें दोनों प्रणालियों के गुण तो मौजूद हो परन्तु उनमें अतिरेक एवं अलगाव जैसे अवगुण न हो। पण्डित जी के अनुसार पूंजीवाद और समाजवाद केवल मानव के शरीर एवं मन की आवश्कताओं पर विचार करते हैं और वे भौतिकवादी उद्देश्यों पर आधारित है परन्तु मानव के विकास के लिए भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ–साथ मानव का आत्मिक विकास भी आवश्यक है।

एकात्म मानववाद के वैचारिक दर्शन प्रतिपादन दीनदयाल उपाध्याय ने मुम्बई में 22 अप्रैल से 25 अप्रैल 1965 में चार अध्यायों में दिये गये भाषण में किया। वे मानव को विभाजित करके देखने के पक्षधर नही थे। वे मानव मात्र का हर उस दृष्टि से मूल्यांकन करने पर जोर देते थे जो उसके सम्पूर्ण जीवनकाल में किसी भी छोटी अथवा बड़ी जरूरत से सम्बन्ध रखती हो। विश्व इतिहास में मानव मात्र की समग्रता का चिन्तन केवल एकात्म मानववाद के दर्शन में ही परिलक्षित होता है। एकात्म मानववाद मानव जीवन एवं सम्पूर्ण सृष्टि के एकमात्र सम्बन्ध का दर्शन है। इसका वैज्ञानिक विवेचन पण्डित दीनदयाल उपाध्याय ने किया था। भारतीय जनसंघ के इतिहास में यह ऐतिहासिक घटना 1965 के विजयवाड अधिवेशन में हुई। इस अधिवेशन में सभी प्रतिनिधियों ने करतल ध्वनि से एकात्म मानववाद दर्शन को स्वीकार किया। एकात्म मानववाद एक ऐसी धारणा है जो सर्पिलाकार मण्डलाकृति द्वारा स्पष्ट होती है जिसके केन्द्र में व्यक्ति से जुडा एक घेरा परिवार, परिवार से जुडा हुआ एक घेरा समाज जाति फिर राष्ट्र विश्व और फिर अनन्त ब्रह्माण्ड को अपने में समाविष्ट किये है। इस अखण्डमण्डलाकार आकृति में एक में से दूसरे फिर दूसरे से तीसरे का विकास होता जाता है, सभी एक दूसरे से जुड़कर अपना अस्तित्व बाधते हुए एक दूसरे के पूरक एवं स्वाभाविक सहयोगी है इनमें कोई संघर्ष नही है।

एकात्म मानववाद के प्रणेता पण्डित दीन दयाल उपाध्याय का मानना था कि भारतवर्ष विश्व में सर्वप्रथम रहेगा तो अपनी संस्कृति एवं संस्कारों के कारण। उनके द्वारा दिया गया मानवीय एकता का मंत्र हम सभी का मार्गदर्शन करता है उन्होंने ने कहा था कि मनुष्य का शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा ये चारों अंग ठीक रहेगे तभी मनुष्य को चरम सुख और वैभव की प्राप्ति हो सकती है। उनका कहना था कि जब किसी मनुष्य के शरीर के किसी अंग में काटा चुभता है तो मन को कष्ट होता है बुद्धि हाथ को निर्देशित करती है तब हाथ चुभे हुए स्थान पर पल भर में पहुंच जाता है और कांटे को निकालने की चेष्टा करता है यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। मानव की इस स्वाभाविक प्रवृत्ति को पं0 दीनदयाल उपाध्याय ने एकात्म

मानववाद की संज्ञा दी। पं0 दानदयाल ने मानव समाज और प्रकृति व उसके सम्बन्ध को समग्र रूप में देखा मनुष्य के एकात्म मानव दर्शन में तन, मन, बुद्धि और आत्मा का सम्मिलित स्वरूप माना गया। मानव की यही समग्रता ही उसे समाज के लिए उपयुक्त और उपादेय बनाती है। भारतीय चिन्तन द्वारा प्रतिपादित धर्म, अर्थ काम के प्रतीको के रूप में मानव आत्मा को मोक्ष की ओर प्रवृत करने वाला विचार ही एकात्म मानववाद में समाविष्ट है। समग्र मानव को निर्मित करने वाले इन चार तत्वों में एकात्मकता अपेक्षित है, क्योंकि यही एकात्मता मानव को कर्मठता की ओर प्रेरित कर उद्यमी बना सकती है जिससे समाज का हित–सवर्धन सम्भव है। पं0 दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद भी इसी वैचारिक अनुष्ठान एवं लोक नीति पर आधारित है जिन्हे आज का समाज अपना मार्ग दर्शन सिद्धांत मानता है। ''सबका साथ सबका विकास'' जैसा नारा भी उन्ही की अंत्योदय (समाज के अन्तिम व्यक्ति का उत्थान) की अवधारणा पर आधारित है।

पंडित जी समाजवाद और साम्यवाद को अव्यावहारिक सिद्धान्त के रूप में देखते थे। उनके अनुसार ये दोनों ही भारतीयो के अनुरूप नहीं है और न ही व्यावहारिक है। भारत को चलाने के लिए भारतीय दर्शन ही प्रमुख वैचारिक उपकरण हो सकता है। पण्डित जी पश्चिम के अंधानुकरण के विरोधी ये लेकिन वे सभी मानवीय प्रयत्नों को आदर देना चाहते थे, नवीन प्रयोगों में उनका उपयोग करना चाहते थे। सभी संशोधित अच्छी बातों को वे पाश्चात्य अवधारणा के आधार पर नही मानवीय प्रयोग की संकल्पना के आधार पर स्वीकार करना उचित समझते थे उनके अनुसार–''विश्व का ज्ञान हमारी थाती है। मानव जाति का अनुभव हमारी सम्पत्ति है। विज्ञान किसी देश विदेश की बपौती नही है। यह हमारे भी अभ्युदय का कारण बनेगा।''[प] वे पश्चिम के प्रगतिभूत 'परिणामों' की नकल नहीं करना चाहते थे। ये उन प्रगति के 'कारणों' का अध्ययन कर उनसे सीखने का आग्रह करते थे। उनकी पाश्चात्य दर्शन की ओर देखने की यह नजर तथा यूरोपीय साम्राज्यवाद के प्रतिकार में भारतीय अधिष्ठान वाले शुद्ध राष्ट्रीयता के आग्रह का परिणाम यह हुआ कि पश्चिम की सब अच्छी बातें मानव जाति के खाते में जमी की गई तथा उनकी कमियों को पाश्चात्य जीवन–दर्शन की कमजोरियों के रूप में उल्लिखित किया गया। सामान्यतः पश्चिम के प्रतिक्रियावाद, जड़वाद, एकांगी दृष्टिकोण, जीवन का खण्ड–खण्ड विचार तथा उपभोगवाद की पं0 दीनदयाल ने बहुत आलोचना की। पश्चिमी विचार हमें क्यों अग्राह्य है? उन कारणों को पं0 दीनदयाल ने निम्नवत् स्पष्ट किया

1. पश्चिम का विचार केवल ज्ञानेन्द्रियों पर निर्भर है। केवल ज्ञानेन्द्रियों से पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं होता, पूर्ण ज्ञान 'प्रज्ञा' से ही आता है। भारती य ऋषि–मुनियों ने अंदर से देखकर 'समग्रता का दर्शन' किया। हमारा केन्द्र 'पूर्णता' है, अन्यों का एकांगी। भारत ने जब भी सोचा विश्व के मानवों का ध्यान में रखकर सोचा।
2. पश्चिम द्वारा उपस्थित किया गया 'व्यक्ति' बड़ा या 'समाज' यह सवाल ही गलत है। व्यक्ति और समाज अभिव्यक्त हैं। भारत ने माना कि व्यक्ति के बिना समाज नहीं, समाज के बिना व्यक्ति नहीं/दोनों अन्योन्याश्रित हैं।

एकात्ममानव दर्शन की भावपूर्ण व्याख्या करते हुए पण्डित जी ने बम्बई में अपने ऐतिहासिक भाषण में कहा था–''विश्व का ज्ञान और आज तक की अपनी सम्पूर्ण परम्परा के आधार पर हम ऐसे भारत का निर्माण करेगे जो हमारे पूर्वजों के भारत से अधिक गौरवशाली होगा जिसमें जन्मा मानव अपने व्यक्तित्व का विकास करता हुआ सम्पूर्ण मानवता ही नहीं अपितु सृष्टि के साथ एकात्मता का साक्षात्कार कर नर से नारायण बनने में समर्थ हो सकेगा।''

पण्डित जी के एकात्म मानवदर्शन के नाम से जाने गये विचार को उनके वैचारिक चिन्तन से सहमत समूह अन्य अनेक नामों से भी पुकारते है जैसे एकात्मकतावाद, समन्वित मानववाद, परिपूर्ण मानववाद, समग्रमानव का विचार आदि। पण्डित जी ने संघ शिक्षा वर्ग के एक बौद्धिकवर्ग में इसे 'षट्पदीवाद' भी कहा है। परन्तु अन्तिम रूप से पण्डित जी वे इन विचारो को एकात्म मानववाद के नाम से ही मान्यता एवं प्रसिद्ध प्राप्त हुई। एकात्म मानववाद के दर्शन के सम्पूर्ण सार को पण्डित जी के शब्दों में ही निम्न प्रकार उल्लिखित किया जा सकता है–''हमारी सम्पूर्ण व्यवस्था का केन्द्र मानव होना चाहिए जो 'यत पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे' के न्याय के अनुसार समष्टि का जीवमान प्रतिनिधि एवं उसका उपकरण है। भौतिक उपकरण मानव के सुख के साधन है, साध्य नहीं।''

पं0 दीनदयाल ने अपने विचारों के प्रतिपादन के लिए जो नाम 'एकात्म मार्गदर्शन' खोजा वह बहुत व्यापक सम्भावनाओं वाला तथा सटीक लगता है। पश्चिम में मानवतावाद की मुख्यतः भौतिकवादी व्याख्या हुई तथा मानववाद दो उग्र खेमों में बट गया। व्यक्तिवादी उदार मानववाद तथा साम्यवादी उग्र मानववाद के खेमों में बटे मानववाद में एकात्मकता की समस्या एक वैश्विक समस्या है। लोक तंत्रात्मक, समाजवाद, लोकक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा, नववाम और यूरो कम्यूनिज्म के प्रयत्न इसी दिशा में किये गये है। एकात्म मानववाद प्रत्यय इस सन्दर्भ में सार्थक परिभाषिक सामर्थ्य से युक्त है। यदि इसमें विवेचना की प्रखरता एवं चिन्तन क्रम का वैश्वीकरण लाया जा सके तो विचार परम्परा की दृष्टि से पं0 दीनदयाल का यह बहुमूल्य योगदान संसार स्वीकार कर लेगा।

पं0 दीन दयाल उपाध्याय द्वारा प्रतिपादित एकात्ममानववाद का सिद्धान्त वर्तमान समय में बहुत ही प्रासंगिक है क्योंकि आज विश्व की जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा गरीबी में जीवनयापन कर रहा है। आर्थिक विकास के विभिन्न मॉडलो से भी आशानुरुप परिणाम नहीं मिला ऐसे में एकात्मानववाद का दर्शन एकीकृत एवं संधारणीय है। एकात्म मानववाद न केवल राजनीतिक बल्कि आर्थिक एवं सामाजिक लोकतंत्र एवं स्वतन्त्रता को भी बढ़ाता है। यह सिद्धान्त विविधता को प्रोत्साहन देता है अतः भारत जैसे विविधता पूर्ण देश के लिए यह सर्वाधिक उपयुक्त है।

सन्दर्भ

1. भारतीय जनसंघ : घोषणाएँ व प्रस्ताव भाग 1, पृ0 4
2. बौद्धिक पंजिका, राजस्थान; 4 जून 1964 को संघ शिक्षा वर्ग में दिए गए बौद्धिक वर्ग के आधार पर
3. एकात्मदर्शन–अध्याय–4, राष्ट्रजीवन के अनुकूल अर्थ रचना – पृष्ठ 73**6**

A Comparative Study of Teaching Attitude of Secondary Teachers of Government-aided and Private schools

Dr. Surendra Pal
Associate professor
Deptt. of Teacher education
D.A.V (P.G) College
Muzaffarnagar, U.P.

Amit Kumar Sharma
Research Scholar
Deptt. of Teacher education
D.A.V (P.G) College
Muzaffarnagar, U.P.

Abstract

The present study was designed to compare teaching attitude of secondary teachers of Government-aided and private school. The main objective of the study was to know the teaching attitude of secondary teachers of government-aided and private schools and also to compare their teaching attitude for finding whether their exist any significance difference in the attitude of government aided and private school secondary teachers.

The sample for the present study consisted of 200 secondary schools teachers (100 Government-aided secondary school teachers and 100 private school secondary teachers) selected randomly from the different schools in Meerut district of Uttar Pradesh. In the order to assess the teaching attitude of government-aided and private school teachers 'Teaching Attitude Inventory' developed by Dr. S.P. Ahluwalia was used.

The result revealed that there is a significant difference between the attitude of Government-aided secondary school teachers and private school teachers towards teaching profession. It was found that teaching attitude of government aided secondary school teachers is higher than private school teachers.

Keywords: Teaching attitude, Government-aided school, Private school

INTRODUCTION

Education has accorded and honored place in India Society. Education is life long process. Education is a very broad comprehensive activity connecting from the very moment the child comes to the world and terminating with his death.

The meaning of education is well explained by each letter of its word as-

E- Energy

D- Discipline

U- Unity
C- Confidence
T- Talent
I- Interest
O- Opportunity
N- Nation

According to **Prof. John Dewey** education is defined as: "Education is a process of experience because life is growth, education means helping inner growth being restricted by age. The growth process is process of adjusting to each phase as well as adding in the development of one's skill".

The analysis of the word education means development of all those capacities in the individual which will enable him to control his environment and fulfill his responsibilities.

Education is a mean through which society perpetuates and spreads its own culture. It is indispensable for understanding social problems and removes them. It is also considered to be the means through which the general productivity of the population is raised leading to better standards of living. The quality of life in terms of good health, good social atmosphere, personality growth and better social living is also closely associated with the educational status of the individual. Education is the process of bringing out the potentialities of an individual and unfolds the natural abilities and interest before the society. Education is all round development of the human individual. The personality of an individual is a complex one. It has different aspects such as social, physical, intellectual, political, spiritual, psychological, moral etc.

Emphasis on one or the other aspect has led to different definitions. A spiritualist stresses the self-realization aspect of education. A moralist thinks that education is a process which leads to the formation of character. If you lost wealth you lost nothing, if you lost health you lost something, if you lost character you lost everything.

There are various schools of psychology which have influenced the interpretation of the educative process. Great psychologists and philosopher **John Locke** said that-

"Child's mind was a clean slate and a teacher could write anything on it." Others were of the view that a child was just like clay and a teacher like a potter could make anything out of it. All these different opinions have led to different interpretations or definitions of education. Thus the role of a teacher in educational process is always challenging and dynamic. **ROLE OF THE TEACHER IN EDUCATION**

The role of the teacher in a teaching and learning environment is to assist students with making connections and therefore finding meaning through an educational process. The work of a teacher is not only transmission of knowledge but it is something more than that. Teacher's great task is inspiring and guiding their students towards cherished goals and for that Lifelong learning should be the motto of every teacher. The teacher is a setter of the stage, a supplier of

material and opportunities, a provider of an ideal environment, a creator of conditions under which natural development takes place. These all duties that are done by a teacher can only be performed well only when he possess good attitude towards teaching.

Concept of Teaching Attitude

In operational definition the term attitude often is used in a generic sense to refer to any report of what people think or feel or the way in which they intend to act. It may be defined as the degree of positive and negative effect associated with some psychological object. It means any symbol, personal slogan institution ideal or ideas which people can differ with respect to positive or negative effect. An individual who has positive effective or feeling associated with some psychological object is said to have a favorable attitude and who has negative effect or feeling would be said to have an unfavorable attitude.

Attitude can be defined as a positive or negative evaluation of people, objects, event, activities, ideas, or just about anything in our environment, but there is debate about precise definitions.

Allport defined the term attitude as, "A mental and natural state of readiness, organized through experience, exerting a directive or dynamic influence upon the individual's response to all objects and situations with which it is related."

Attitude plays a very prominent role in effective communications in the class-room. A teacher with a positive attitude towards teaching is considered better and becomes popular among the students for his/her better teaching.

While it is true that there are teacher whose attitudes are positive towards the promotion of good teaching learning situation will deliver quality education to their students. Thus the term attitude towards teaching has been used as a mental set up towards the teaching profession.

OBJECTIVES OF THE STUDY

The present investigation has been undertaken with a view to fulfill the following objectives:

1. To assess the teaching attitude of Secondary teachers of government-aided schools.
2. To assess the teaching attitude of secondary teachers of private schools.
3. To compare the teaching attitude of secondary teachers of government-aided and private schools.
4. To compare the teaching attitude of male and female secondary school teachers.

HYPOTHESIS OF THE STUDY

1. The Secondary teachers of government-aided schools have moderate teaching attitude.
2. The Secondary teachers of private schools have moderate teaching attitude.
3. There is no significant difference between teaching attitude of secondary teachers of government-aided and private schools

4. There is no significant difference between teaching attitude of male and female secondary school teachers.

OPERATIONAL DEFINITION OF THE VARIABLES

Teaching Attitude: An attitude is a predisposition to react favourably and unfavourably towards ideas, object persons, event or situations.

Government- aided School: A College gets aid from the government is termed as aided college. The Government pays salary to the teachers of the aided colleges and proper pay scale is given to the teachers.

Private School: A College that does not get any funds or aid from the government is called as private College. The Salary of the private college teacher is paid by Management.

POPULATION OF THE STUDY

A population is the totality of an object under consideration. The population for the purpose of this study has been defined as the total number of teachers teaching in Govt. - aided and Private Secondary Schools of Meerut District. Thus, the result of the present study will only be applicable to this population of teachers.

SAMPLE

The principle purpose of the research will be to discover principles that have universal application, to arrive at generalization. To collect data from whole population would be impracticable, or not possible. The Process of Sampling makes it Possible to draw valid inferences on the basis of careful observation or manipulation of variables with in a relatively small proportion of the population. 100 government aided school teachers and 100 private schools was randomly selected from Meerut District. A total of 200 teachers was selected for research.

TOOL USED

For measuring the teaching attitude of Secondary teachers of government-aided and private schools the investigator used 'Teaching Attitude Inventory (TAI)' developed by Dr S.P Aluwalia.

Teaching Attitude of Govt.-aided and Private School Secondary teachers:

Objective 1: To assess the teaching attitude of secondary teachers of government-aided schools.

Hypothesis 1: Secondary teachers of government aided schools have moderate teaching attitude.

It is evident that the mean value of teaching attitude of secondary teachers of government aided schools is 254.30 and standard deviation is 51.57. The obtained mean value was found to be higher than the theoretical mean 180 of teaching attitude scale Also from the norm table of teaching attitude scale the value 242.73 falls in the category of above average. Furthermore the distribution of teaching attitude in secondary teachers of government aided schools is given below:

Table -1
Category wise teaching attitude of secondary teachers of government aided schools

S. No	Teachings attitude category	f_o	f_e	x^2
1	High	02	04	
2	Above average	12	24	17.88
3	Average/moderate	64	44	
4	Below Average	19	24	
5	Low	03	04	

Significant at 0.01 level

In the above table the chi-square test of independence was applied to test the divergence of observed results from expected on the hypothesis of equal probability distribution of a trait in the sample. As per chi-square value, the distribution of teaching attitude in whole sample was not normally distributed. Thus it can be interrelated that sample hold above average level of teaching attitude.

As the mean value comes in the category of high and standard deviation is not too high these trends in conjugation indicates that the hypothesis "The secondary teachers of government aided schools have moderate teaching attitude" is rejected as the secondary teachers of government aided schools have above average level of teaching attitude.

Objective-2: To assess the teaching attitude to secondary teachers of private schools

Hypothesis-2: Secondary teachers of private schools have moderate teaching attitude

It is evident that the mean value of teaching attitude of secondary teachers of private schools is 230.5 and standard deviation is 38.20. The obtained mean value was found to be higher than theoretical value 180 of teaching attitude scale below from the norm table value of teaching attitude inventory 242.73. The value falls in the category of Average/moderate. Furthermore the distribution of teaching attitude in secondary teachers of private schools given below:

Table-2

Category wise teaching Attitude of secondary teachers of private schools

S. No	Teaching Attitude Category	f_o	f_e	x^2
1	**High**	3	4	
2	**Above-Average**	18	24	6.06
3	**Moderate/Average**	54	44	
4	**Below/Average**	20	24	
5	**Low**	5	4	
	Total	100	100	

Not significant at 0.05 level

In the above table the chi-Square test of independence was applied to test the divergence of observed results from those expected on the hypothesis of equal probability distribution of a trait in the sample.

The chi-square value is 6.06 which is not significant even at 0.05 level value i.e. 9.488. Thus as per the chi-Square value, the distribution of teaching attitude in the whole sample is normally distributed. Thus it can be interrelated that sample holds moderate/Average level of teaching attitude. Therefore it is concluded that secondary teachers of private schools have moderate teaching attitude. As the mean value comes in the category of average/moderate and standard deviation is not too high these two trends in conjugation indicates that the hypothesis "The Secondary teachers of private schools have moderate teaching attitude" is retained and we conclude that the secondary teachers of private schools have moderate teaching attitude.

Comparison of teaching attitude of secondary schools teachers of government-aided and private schools:

Objective 3: To compare the teaching attitude of secondary teachers of government aided and private schools.

Hypothesis 3: There is no significant difference between teaching attitude of secondary teachers of government aided and private schools.

Table-3

Comparison of teaching Attitude of secondary teachers

Of government aided and private schools

Variable	Sample	Mean	S.D	SE_M	Critical Ratio
Secondary teachers of Govt.– aided schools	100	254.3	51.57	6.417	3.71
Secondary teachers of private schools	100	230.5	38.20		

Significant at 0.01 Level

The above table reveals that the obtained critical Ratio value is 3.71 which is significant at 0.01 level. It seems to be safe to interpret that there exist significant difference in the teaching attitude of secondary teachers of government-aided and private schools. The mean value of secondary teachers of government aided seems to be higher than secondary teachers of private schools. This results leads us to inference that the secondary teachers of government-aided

schools possess significantly higher teaching attitude than secondary teachers of private school. Therefore the hypothesis that "There is no significant difference between teaching Attitude of secondary teachers of government aided and private schools" is **Rejected.**

Comparison of teaching attitude of male and female secondary school teachers:

Objective 4- To compare the teaching attitude of male and female secondary school teachers

Hypothesis 4- There is no significant difference between teaching attitude of male and female secondary school teachers

Table -4

Comparison of teaching Attitude of male and

Female secondary school teachers

Variable	Sample Size	Mean	S.D	SE_M	Critical Ratio
Male secondary schools teachers	106	262.14	49.93	6.814	3.67
Female Secondary School teachers	94	237.16	46.41		

Significant at 0.01 level

The above table reveals that the obtained C.R value is 3.67 which is significant at 0.01 level. It seems to be safe to interpret that their exist significant difference in the teaching attitude of male and female secondary school teachers. The mean value of male secondary school teachers seems to be higher than female secondary school teachers.

The results leads up to inference that the Male secondary teachers possess significantly higher teaching attitude than Female secondary school teachers.

Therefore the hypothesis that **"There is no significant difference between teaching attitude of male and female secondary school teachers" is rejected.**

CONCLUSIONS:

From the analysis of the data it is clear that there exists significant difference with respect to teaching attitude among secondary teachers of government-aided schools and private schools.

Secondary teachers of government aided schools have higher teaching attitude than private schools teachers.

There exists significant difference with respect level of teaching attitude among male and female secondary school teachers. The male teachers of secondary schools have higher teaching attitude than female teachers of secondary schools.

.

REFERENCES:

Asha R .(2000), "A comparative study of Attitude of teachers towards Teaching profession" Journal of Education Research and Extension, Vol.30 No.3 pp25-30 .

Banerjee, S. & Behera, S. K. (2014), "An Investigation into the attitude of secondary school teachers towards teaching profession in Purulia District of West Bengal, India", '*International Journal of Academic Research in Education and Review, 2(3),* 56-63.

Maliki, A. E. (2013), "Attitudes towards the Teaching Profession of Students from the Faculty of Education, Niger Delta University. *International Journal of Social Science Research, 1(1),* 11-18.

Mehrotra, R.N. (1973), "Effect of Teacher Education Programmes on the Attitudes of Teacher towards the Teaching Profession" *Second Survey of Research in Education,* pp. 438.

Mishra, G. (1977), "A Study of the Attitudes of Teaches working in Government Aided Conventional Sanskrit Vidyalayas of Varanasi towards teaching profession" *Third Survey of Research in Education,* pp821-822.

Muhammad, Q. M, & Zagham (2011), "Attitude of secondary school teachers towards teaching profession" '*International Journal of Academic Research*' Vol. 3 Issue 1, p985.

Mumthas, N. S. (2012), "Attitude towards teaching before and after B.Ed programme" *Edutrack, 11(6).*

Osunde, A. U. & Izevbigie, T. I. (2006), "An Assessment of Teacher's Attitude towards Teaching Profession in Midwestern Nigeria" *Education, 126 (3),* 462-467.

Parvez, M. & Shakir, M. (2013), "Attitude of prospective teachers towards teaching profession" *4(10).*

Panda, M. (1996), "Attitude of Teacher–Trainees towards Teaching Profession–*A Differential Study Journal of the Educational Review"* 102, (3) pp65-71.

Pushpam, M. G. (2018), "Attitude towards teaching profession and job satisfaction of women teacher in Coimbatore", *Journal of Educational Research and Extension, 40(2).*

Sahaya M. and Samuel, M. (2019), "Influence of emotional intelligence on attitude towards teaching of student teachers" *Edutrack, 9 (12).*

Major condition of lower class Life Depicted in Indian Novels

Dr. Radhey Shyam Suman
Patna University, Patna
E.mail- rrssuman117@gmail.com

Abstract

Literature is a powerful weapon in the education of masses. Literature is representation of reality the socio economic, political scenario, quite alive in the literary work. The social changes are possible through them. It is possible to change through Literature, to make suffers aware in the system and to make those who are responsible for iniquities conscious. The changing nature of society and contemporary social life are effectively represented in the literature. The social issues in India during the pre-Independence and post-Independence period are topics for consultation. As India has become a more modern and Independent nation, these class issues have become a fertile subject for Indian literature. The present paper discusses the major conditions of lower class life depictedin Indian novels.

Key Words: Literature, Novels, Social Issues, Lower Class.

Indian Novelists mostly depict the problems of poverty, greed and exploitation and closely related to these problems is the Caste-system. From the perspective of social breadth, regionalism and communalism, Indian fiction in English Mirrors the Social and ethical diversity.

In pre-Independence period during English ruled India, we see mostly thinkers, writers were writing and voicing for lower class life. Many Indian writers effected from English Novelists; they adopted their works. Charles Dickens was the foremost English Novelists of the Victorian Era. He wrote about the terrible effect of Industrialization on people's lives and character. His novel ***Hard Times*** and ***Oliver Twist*** became world famous. The nineteenth century British novelist Thomas Hardy for instance wrote about traditional rural communities of England that were fast vanishing.

Pariksha Guru (1882), by ***Srinivas Das*** shows the Inner and middle classes in India. The characters in the novel faced contradiction in adapting to colonized-sociaty.

Lal Behari Day published Govinda Samanta or the History of Bengal Raivat in 1874, the novel is set in Burdwan district in mid-nineteenth Century. The author's intention in his own prefatory words is to furnish "a Plain and unvarnished Tale of a plain peasant Living in the Plain country of Bengal".

This novel is a Family Saga, which relates the life and times of Govinda Samanta, from his birth till death ***Potheri Kunjambu,*** a lower caste writer from North Kerala wrote a novel called ***Saraswativijayam,***in 1892, Mounting a strong attack on caste-oppression. This novel shows, a young man from an untouchable caste, living his village to escape the cruelty of his Brahmin Landlord.

From the 1920s, in Bengal to a new kind of Novel emerged that depicted the lives of peasant and low castes, ***Advaita Malla's Titash Ekti Nadir Naam*** is an epic about the Mallas, a community of Fisherfolk who live off fishing in the river Titash.

Mulk Raj Anand who was the first novelist in English to choose for his raw-material the lower class life of the masses: the beggars, Untouchables, factory workers, artisans, peasants and servants. Anand presented the real India of degrading poverty exposed the economic iniquities of the caste-system and the vogue he started inspired other writers like, ***Bhabani Bhattacharya, Simenon Maratha, Kamla Markandaya, Raja Rao,*** to present the poverty and problems of poor peasants, effectively. Their characters represent the caste class, consciousness more, effectively of all modern world Literature, the Literature of India is especially focused on the theme of social class. Traditional Indian society is divided into rigid social classes known as castes. Caste System in India has had its impact on all aspects of life on the past, present and future.

Mulk Raj Anand's Novels are faithful documents on the contemporary social set up as it Present a real picture of the real India. He is a lover of mankind and his novel reflect his responsibility towards society especially those who are marginalized, oppressed, and the Subaltems who suffer at the hands of the colonial matters and the so called representative of the upper class of traditional Hindu Society. His most popular novels are Untouchables (1935), Coolie (1936), The Village (1939), Across the Black Waters (1940), The Sword and The sickle (1942), Lument of the Death of a Master of Arts (1943), The Big Hearts, (1945). When Anand started writing in 1930s, India was in a state of transition, a change was coming in every field of life and simultaneously the struggle for political freedom was going momentum on one side and fight against poverty illiteracy, casteism, superstition. Untouchability was also being condemned by the writers of the age as they thought that without economic and social independence political freedom was incomplete and meaningless.

Anand's novel "***Untouchable***" **(1935),** and ***Coolie*** (1936), both of which examined the problems of poverty in Indian society. "Untouchable" the plot this book Anand's first revolves around the argument for eradicating the caste system. It depicts a day in the life of "Bhakha", a young "**Sweeper**" who is "**Untouchable**" due to his work of cleaning Latrines.

Bhabani Bhattacharya focuses light over A curious contradictions of the times, while men die to hunger, wealth grows and while kindness dries up religion is more in demand. His novel "***So many Hungers"*** was inspired by the great famine of Bengal (1943). Bhattacharya has a thorough grasp of his basic theme of Hunger and has dealt with most of its significant aspects and varieties. His fiction is based upon man's hunger for food and political freedom. But it is also gives adequate consideration to other forms of human Hungers.

In "***He Who Rides A Tiger"***, Bhattacharya implies a lie to expose the truth about caste and religion, as they obtain in the society, such novels as Anand's "Untouchable" and Bhattacharya "**He who Rides a Tiger**", in which caste provides the basis of each story, condemning the iniquities and hypocrisies of the caste system. Untouchbility is seen by both novelists as a tragedy of socially blighted humanity.

Kamla Markandaya also uses language of common man: she thinks like a wise Philosopher, who is behind her expression in the novel. In all over her novels she has maintained her own narrative style revealing social realism at the care of expression. Her novels "***A Handful of Rice"*** (1960)***, "Necter in a Sieve"*** (1954), the fundamental subject of "A Handful Of Rice" is monetary issues in the life of normal Indian rustic youth. Ravi: A Primary Hero of the novel can't adapt Money related Shakiness in his life and swings to urban for better life.

In ***Nector in A Sieve,*** Kamla Markandaya presented Indian rural woman, who is quite Crusadev Kamla Markandaya has portrayed struggle conflict in changing Indian village.

Raja Rao from 1966 to 1980 was Professor of Philosophy at the University of Texas at Austin. The first of Raja Rao ***Kanthapura*** (1938), describes daily life of Indian villages during a revolt against an overbearing plantation owner. Rao's commitment to Gandhian nonviolence is clearly revealed in his description of the peasant's conversation to the principal of civil disobedience. Raja Rao's '***Kanthapura'*** and Balachanda Rajan's ***'The Dark Dancer'*** are most sophisticated in style.

Conclusion: Novels have the capacity to include and focus on the lines of those who were not often known to literate and middle-class circles. We saw examples of those in these various Novels of **Mulk Raj, Premchand, Bhattacharya** and others equally or even more popular present with the work other Novelists.

Picking varied background's people together in a novel produces a sense of shared community and helps the readers know the society through a new perspective that they couldn't even imagine. The advantage of this new perspective is a question or reflect upon then own identities and a tending to improve will.

References:

1. Mulk Raj Anand, the story of my experiment with A White Lie. Indian Literature, Vol.X No.3: 1967.
2. M.H. Abrams, A Glossary of Literary Terms Singapore: EDS term Press, 2003.
3. Bhabani Bhattacharya, So Many Hungers (Bombay): Jaico Publishing House, 1947.
4. Bhabani Bhattacharya, A Goddess Named Gold: An allegory in a village, New York: Crown Publishers, 1960.
5. Raja Rao, Kanthapura, Orient Paper Backs, New Delhi: 2008. Print.
6. P. Dayal: Raja Rao: A Study of His Novels, New Delhi: Atlantic Publishers and Distributors, 1978.
7. Markandaya Kamla, A Handful Of Rice, Oriental Paper Backs, New Delhi, 1985.
8. Banumathe Balen "Social Realism in the Novels of Kamla Markandaya with special reference to Nector in a Sieve, Possession and A Handful Of Rice, International Journal of English and Literature, Vol.4(9) Nov. 2013.Web.

LEARNER'S PROFILE: KNOWING LEARNER IN BETTER WAY

Dr. Chaman Kaur
Assistant Professor
Department of Teacher education
Sri Lal Bahadur Shastri Degree College
Gonda, U.P.

Abstract

With the change in time our educational system is also transformed to serve the nation by producing better masses for development of our country. In this connection National Curriculum Framework 2005 also suggested that teaching-learning process should be child centred rather than teacher-centred that was the traditional method of teaching. When we talk about the child centred method than every teacher should know his or her learner in better way.. Knowing the students in better way not only increases trust and engagement, but it also help the teacher to differentiate instruction and personalize learning. The more the teacher knows about learner's background, strengths, knowledge, learning style, the better he or she can target instruction towards the children learning needs. Several researchs also shows that knowledge of individual students does have a measurable positive impact on achievement. But in our country there are so many students in a class, how can a teacher know each of his or her learner on individual level. For this the teacher needs some document or file that help him learn more about their students.this document is known as Learner Profile. The present paper dealt with the meaning, need, benefit and tools of learner's Profile.

Key Words: Learner, Profile, Achievement, Assessment, Child-centred, Teaching-Learning process

Introduction:

Indian classrooms are made up of a wide diversity of learners. Every year, there are students on different levels, who come from different cultures, and who bring different talents and struggles to the environment. To make the teaching-learning process more effective the individualize instruction are required. For this the teacher should know about each student in the class. One of such aspect teachers consider when planning differentiation is **learner profiles**, which include-Gender, Learning style, Culture, Talents, Intelligence, Interest, etc.

Etymological meaning of the word 'Profile' is 'outline'. A profile of learner is an outline of his learning-related facts. Learning-related facts pertains to his or her

- interest in studies
- capacity
- learning goals and learning methods
- skills
- learning speed,
- learning circumstances and
- learning problems, etc.

A common misconception among educators is that learner profiles are all about learning style. As we can see, differentiating for learner profiles isn't simply taking into account **learning style**, a student's way of making sense of information like visual or tactile. When considering learner profiles to make choices about content, process, or product, teachers take into account a variety of characteristics that make up a student as a unique individual.

The term "**Learner profile**" is used in several different senses in the educational community. In all cases, a Learner profile provides information about a learner, but the information can be presented and used in different ways. Learner profiles can include data submitted by a learner, as well as information which is added by teacher and other staff members at an educational institution to provide a complete picture of the learner. It can take the form of a formal document or process, or can simply be a series of conversations with students. Access to many types of learner profiles is restricted due to concerns about security and privacy. So we can say that a Learner Profile is a valuable tool that-

- draws on detailed information from the planning matrix
- can be succinct or extensive depending on the needs of the student
- can include information about a student's skills, strengths, interests
- can highlight potential barriers to learning
- make recommendations about what is needed to support learning
- is a document for all staff, not only the individual teacher, as all staff will at some stage interact with the student and need to be aware of the learner profile

  (Note: issues relating to confidentiality and privacy must be respected)

Who should complete the profile?

The learner profile is completed by a student's support team. This may include parents or careers counselor, school personnel including different subject teachers and allied health professionals. It can also include the student.

Components of the learner profile:

It is important to identify which type of learner profile best suits each school context and individual student. For this reason, no two learner profiles will be the same. Generally, a well designed learner profile will include the following:

- history and background information
- diagnostic/assessment information (summary)
- summary of interests, strengths and learning styles
- current level of development
- priority of learning needs

It is important that a learner profile focuses on student strengths to build on and develop further skills (strengths based approach), rather than a deficit model.

Need and purpose of learner profile:

The learner profile outlines whether to and to what extent a teacher may need to differentiate their curriculum, instruction or teaching and school environment. It assists teachers and parents to priorities areas of need and specific interests and can share this information in a simple way. It can be particularly useful to support planning and transition and may be a precursor to a more detailed individual education plan if the need is indicated.

Learner profiles can be created for a variety of purposes. The purpose is agreed between the student, parents, and the teacher. This will inform the discussion, questions and information provided by learners and their families. It's useful to develop a profile of all of your students and to use this as the basis of a class profile.

Key questions to ask when completing a learner profile:

- Who is the student
- t?
- What does this student need to learn?
- What are his or her learning priorities? (school and family)
- Are there any adjustments required for this student to meaningfully engage and participate in learning?
- What whole of school adjustments/changes are required?
- What classroom adjustments are required?

- Have all key impact areas for this student been considered (social, communication, repetitive behaviours, information processing, sensory)?

Method Used in Preparation of Learner's Profile:

The work of preparation of learner's profile can be undertaken by following methods:

- **Observation**: In this method, the learning abilities such as study habit, study skills, note-taking ability, self-study ability, self-evaluation of the learner are observed and annotated in his profile.
- **Interview**: In this method, the interaction with learner is done face to face. The profiler (teacher) makes the learner sit before him and ask him questions in order to ascertain facts regarding his profile. In this way the knowledge about learner, his family status, reason of education, educational qualifications, study resources, study problems etc. are ascertain and recorded in his profile.
- **Questionnaire:** The questions that are asked orally in interview are asked in the written form in questionnaire. The learner has to respond to them in written form, with the difference that interview can be conducted for one learner at a time, while the questionnaire can be administered on the entire class simultaneously. This method is generally followed in schools where profiles of all learners are prepared. Thus the information gathered about the learner are annotates in their profile.
- **Postal or E-mail**: The learners, who are undergoing correspondence courses, cannot be observed, nor can they be interviewed or made to sit together to fill the questionnaire. These learners are sent the questionnaire by post or e-mail and the they fill them and send back to the sender.
- **Telephonic Communication**: If some specific information is to be sought from the learners undergoing a distance education course, it is obtained by telephone, and is annotated in their profiles.

A learner profile can support:

- Students in letting their teachers and others get to know and understand their interests and strengths
- Families in conveying important information about their child or young person that may affect learning and inclusion
- Teachers in knowing about students and building effective relationships with them
- Teachers in understanding what works for students and what tools, technologies, differentiations or adaptations might be needed
- Teacher's in developing an inclusive classroom learning programme.

Creating a learner profile

Learner profiles can be created by the student or collaboratively with parents and teachers. Senior students may prefer to just have a conversation. Before developing a learner profile, discuss with the student and their parents, teachers and mentor the following aspects:

- the purpose of the profile
- the format, which will influence how easily it can be shared and whether it can be added to over time
- if they would like the learner profile to be linked to the school's student management system or from their school e-portfolio.

What to Include?

Depending on the purpose, a useful profile (whether an official document or simply inquiry by the teacher) can include:

- things they're good at
- likes and interests
- hopes and dreams
- dislikes and things they avoid
- important people in their lives
- pets
- life experiences (activities, places, kinds of people they like)
- how they like to learn and what helps
- things that make it difficult for them to learn
- what they do when they need help
- how they describe and experience school
- what makes them excited, grumpy or frustrated and how they express this
- about their support team
- examples of supports that have worked in the past.

Tools for creating a learner profile:

Offer students a range of tools so they can select what works best for them. Discuss with students how they want to capture the attention of their audience and what will be the most effective communication style to use. Types of tools could include:

- word document or PowerPoint with images and videos
- video
- letter
- Voice-thread
- discussion with a teacher taking notes
- blog
- story
- picture, drawing, or diagram.

Benefits of Learner Profile:

The learner profile benefits students, teacher, parents, and employer in many ways.

Benefits for students

A learner profile gives students an opportunity to:

- express who they are
- address assumptions people may have about them or their disability
- express their aspirations and passions
- have a say in what goes on for them at school and in their learning.

Learner profiles are created by the student, often with the support of those that know them best. Through creating a learner profile, students develop a deeper understanding of who they are as learners – reflecting on what motivates and challenges them when learning. It also creates an opportunity for self-advocacy: identifying the tools, learning materials and presentation options that will optimize their learning experience

Benefits for all teachers

A learner profile will assist teachers to:

- build a relationship with students
- recognize and remove potential barriers to learning at the outset
- design learning environments and opportunities that build on student interests and experiences to maximize engagement

- select curriculum materials and content that students will be able to access
- offer a range of options for demonstrating thinking and learning that will work well for students
- support positive transitions to new environments.

Alongside assessment data, a learner profile supports teachers in knowing about the learner, providing information from the student's perspective. This information sits alongside assessment data. Learner profiles can help school staff build relationships with students and understand things from their perspective. This can inform planning, classroom layout, time-tabling and supports to enable students to participate and contribute in all classroom learning

Benefits for all Parents

A learner profile helps the parent to

- understand learning strengths and characteristics of autism
- know which autism-specific areas may impact on skill development, including communication, social interaction, repetitive behaviours and restricted interests, sensory processing and information processing
- understand what motivates and interests individual students to support communication, social communication and positive behaviour supports
- identify who already is or needs to be involved with the student

Developing a learner profile is a critical starting point for teachers developing effective educational programs and learning outcomes for children on the autism spectrum spectrum in any educational setting.

Benefits for Employer

A learner profile is helpful for the employer -

- in selecting the appropriate candidate.
- in Professional development of the candidate.
- in giving distribution of task.
- in developing promotion criteria.

Conclusion:

In present digital era, emphasis is laid on child-centered teaching-learning process, and this type of teaching-learning environment can be provided only when teachers know all facts about their learners. For this teacher can get all these facts in their profile. With the help of

these facts the teacher can take advantage in collective teaching-learning in general and in individual teaching-learning in particular. In doing so, he can give desired direction to their teaching-learning process. They thus assist the learners, give momentum to their rate of learning and help them in moving ahead as per their capacity.

Furthermore if students are also shown their learning-related profile, they can be motivated to take benefit from it, and they will definitely determine the aims of their study and overcome their limitations. If profile is shown to their parents, they would know about their children correctly and would feel responsibility towards their wards and carry it out as per their capacity.

It is evident from the above that the profile of a learner helps to give feedback for further learning. However, this feedback can be given in proper direction only when the teacher is skilled in giving feedback and the learner is also curious to get it, and guardian are cooperative in nature.

References:

1. Smith and Taylor(1942), ' Appraising Recording student's Progress' Happer and Brother, New York.
2. Thomas, R.M.(1955), 'Judging Students Progress' Longsman, London.
3. Walker,H.W.(1956), 'The measurement of Abilities' University of London Press, London
4. Cornbach, L.J.(1970), 'Essentials of Psychological Testing' Happer and Row Publishers, New York.
5. Cheryl, A. Jones (2005), 'Assessment for Learning' Learning and Skill Development Agency, London.
6. Lal, Raman Behari & Sunita Palod (2017), 'Assessment for Learning' R. Lall Book Depot, Meerut.
7. Pal, Surendra (2017), 'Assessment for Learning' Arjun Publishing House, New Delhi.

A THEORETICAL STUDY ON DIMENSIONS OF SUSTAINABLE DEVELOPMENT GOALS AND IT'S CHALLENGES IN INDIAN PERSPECTIVE

Shashibala Pandey
Research Scholar
Department oF Economics
Deen Dayal Upadhyay Gorakhpur University, Gorakhpur

Abstract

The most widely accepted definition of Sustainable Development was given by the Brundtland Commission in its report Our Common Future (1987). According to the report sustainable development is:

'Development which meets the needs of the present without compromising the ability of future generations to meet their own needs'.

Sustainable development (SD) calls for concerted efforts towards building an inclusive, sustainable and resilient future for people and planet.

The world economies have unified in their efforts to achieve the goals of sustainable development. This is in sheer contrast to the earlier approaches where governments pursued goals for the growth and development of their respective economies. The struggle for growth and betterment has changed pattern of economic development among countries, depleted some of the natural resources and has thus altered the ecological balance. The impact of this is being experienced in the form of global warming and climate change. Since this has created problem for the human life on the earth. This global warming and change in climate has led to think ourselves for better environment for future generation. Sustainable development is a term which in lights the way through which development takes place in such a way that natural resources are sustained and passed on to the future generations unimpaired to meet out their requirements. This paper makes an attempt to understand the challenges faced by India in achieving Sustainable development goals and offers suggestions to overcome them. It's also about ensuring a strong, healthy and just society. This means meeting the diverse needs of all people in present and future communities, and creating equal opportunity to all. The present paper dealt with the discussion about goals and challenges of sustainable development.

Key Words: Development, Goals, Sustainable, Growth, Environment Protection

INTRODUCTION AND BACKGROUND OF THE STUDY:

In 2015, the United Nations General Assembly adopted the 2030 Agenda for Sustainable Development. 193 member countries, including India, got committed to

the 17 Sustainable Development Goals that require efforts to end all forms of poverty, fight inequalities and tackle climate change while ensuring that no one was left behind. India played a significant role in making the declaration and its progress in achieving these goals are crucial for the world as it is home to about 17% of the world population. The SDG India index, released by the NITI Aayog and the United Nations, shows that the nation has a score of 58**,** a little more than half mark in meeting the target set for 2030.

Sustainable Development has become more prominent word of the international community. The struggle for growth and excellence has created imbalance in the economic development among countries, and decreased some of the natural resources, altering the ecological balance. This creates a problem for human life on earth. A step in this direction is necessary to save environment for future generations. Sustainable development is a term which ensures the development in such a way that natural resources are sustained and passed on to the future generations also. Seventeen Sustainable Development Goals (SDGs) aimed to build a more prosperous, more equal, and more secure world by the year 2030 have been developed. They have been adopted by 193 Member States at the UN General Assembly Summit in September 2015 as a part of their agenda for Sustainable Development. India is a signatory to this summit and is strongly committed to the 2030 agenda.

At this juncture this paper makes an attempt to understand the challenges encountered by India in achieving the Sustainable development goals. The paper also makes an attempt to suggest measures to overcome the challenges.

THE SUSTAINABLE DEVELOPMENT GOALS:

The Sustainable Development Goals (SDGs) were born at the United Nations Conference on Sustainable Development in Rio de Janeiro in 2012. The objective was to produce a set of universal common goals that meet the urgent environmental changes, The SDGs are a bold commitment to finish what the Millennium Development Goals (MDGs) started, and tackle some of the more pressing challenges.

All 17 Goals interconnect, success in one-goal motivates for the success of others. For example, dealing with the threat of climate change impacts how we manage our natural resources, achieving gender equality or better health helps which eradicate poverty.

Why focus on Sustainable Development?

The Sustainable Development Goals (SDGs) which came into effect on 1 January, 2016 is an improvement on the Millennium Development Goals (MDGs) [1]. In India, as far as MDGs are concerned, considerable progress has been made in the field of basic universal education, gender equality in education, and global economic growth. However there was slow progress in the improvement of health indicators related to mortality, morbidity, and various environmental factors contributing to poor health conditions .With SDGs in place the Indian

government is now trying to integrate the efforts taken towards achieving MDGs with SDGs. SDGs are wider in scope. The 17 SDGs are as follows

Sustainable Development Goals

Goal 1	End poverty in all its forms everywhere
Goal 2	End hunger, achieve food security and improved nutrition and promote sustainable agriculture
Goal 3	Ensure healthy lives and promote well-being for all at all ages
Goal 4	Ensure inclusive and equitable quality education and promote lifelong learning opportunities for all
Goal 5	Achieve gender equality and empower all women and girls
Goal 6	Ensure availability and sustainable management of water and sanitation for all
Goal 7	Ensure access to affordable, reliable, sustainable and modern energy for all
Goal 8	Promote sustained, inclusive and sustainable economic growth, full and productive employment and decent work for all
Goal 9	Build resilient infrastructure, promote inclusive and sustainable industrialization and foster innovation
Goal 10	Reduce inequality within and among countries
Goal 11	Make cities and human settlements inclusive, safe, resilient and sustainable
Goal 12	Ensure sustainable consumption and production patterns
Goal 13	Take urgent action to combat climate change and its impacts
Goal 14	Conserve and sustainably use the oceans, seas and marine resources for sustainable development
Goal 15	Protect, restore and promote sustainable use of terrestrial ecosystems, sustainably manage forests, combat desertification, and halt and reverse land degradation and halt biodiversity loss
Goal 16	Promote peaceful and inclusive societies for sustainable development, provide access to justice for all and build effective, accountable and inclusive institutions at all levels
Goal 17	Strengthen the means of implementation and revitalize the global partnership for sustainable development

Source: Sustainable Development Goals Report 2019

Sustainable Development Goals have been built on the universal principle of 'leave no one behind' As far as India is concerned, the national development goals of India, converge

well with the SDGs and India is expected to play a leading role in determining the success of the SDGs, globally .

Sustainable Development Goals (SDGs) Index in India and NITI Aayog

NITI Aayog undertook the extensive exercise of measuring India and its States' progress towards the SDGs for 2030, culminating in the development of the first SDG India Index - Baseline Report 2018. The SDG India Index is intended to provide a holistic view of the social, economic and environmental status of the country and its States and UTs. 2/4 It has been designed to provide an aggregate assessment of the performance of all Indian States and UTs and to help leaders and change makers evaluate their performance on social, economic and environmental parameters. The Index has been constructed spanning across 13 out of 17 SDGs (leaving out Goals 12, 13, 14 and 17). It tracks the progress of all the States and Union Territories (UTs) on a set of 62 National Indicators, measuring their progress on the outcomes of interventions and schemes of the Government of India. The SDG Index Score for Sustainable Development Goals 2030 ranges between 42 and 69 for States and between 57 and 68 for UTs. The index documents the progress made by India's States and Union Territories towards achieving the 2030 SDG targets. The Index spans 16 out of 17 SDGs which marks an improvement over the 2018 Index, which covered only 13 goals. The SDG India Index has been developed in collaboration with the Ministry of Statistics and Programme Implementation (MoSPI), the United Nations, and the Global Green Growth Institute. The year 2020 will be the 5 anniversary of the adoption of SDGs by 193 countries at the UN General Assembly. A composite score for SDG Index (2019) was computed in the range of 0–100 for each State/UT based on its aggregate performance across 16 SDGs. The higher the score of a State/UT, the closer it is towards achieving the 2030 national targets. States /UTs are classified based on the SDG India Index Score as follows:

- Aspirant: 0–49
- Performer: 50–64
- Front Runner: 65–99
- Achiever: 100

Sustainable Development Goals (SDGs) initiatives in India

Three core elements of sustainable development are economic growth, social inclusion and environmental protection. It is crucial to harmonize them. Sustainable economic growth, achieving sustainable livelihood, living in harmony with nature and appropriate technology are important for sustainable development. Environmental Sustainability: It prevents nature from being used as an inexhaustible source of resources and ensures its protection and rational use. Aspects such as environmental conservation, investment in renewable energy, saving water, supporting sustainable mobility, and innovation in sustainable construction and architecture, contribute to achieving environmental sustainability on several fronts.

Social Sustainability:

It can foster gender equality, development of people, communities and cultures to help achieve a reasonable and fairly-distributed quality of life, healthcare and education across the Globe.

Economic Sustainability:

Focuses on equal economic growth that generates wealth for all, without harming the environment. Investment and equal distribution of economic resources**.**

The UN Country Team in India supports NITI Aayog in its efforts to address the interconnectedness of the goals, to ensure that no one is left behind and to advocate for adequate financing to achieve the SDGs . In close collaboration with NITI Aayog and partners, the UN has supported thematic consultations on the SDGs to bring together various state governments, central ministries, civil society organizations and academia to deliberate on specific SDGs.

CHALLENGES IN ATTAINING SUSTAINABLE DEVELOPMENT GOALS (SDGs) IN INDIA:

As per the Sustainable Development Goals Report, 2019 Increasing inequality among and within countries requires urgent attention. 3 out of every 4 stunted children live in Southern Asia and sub-Saharan Africa.Young people are more likely to be unemployed than adults. Barriers in achieving gender equality. Global hunger has been on the rise after a prolonged decline. Extreme poverty declined from 36% in 1990 to 8.6% in 2018, but the pace of poverty reduction is starting to decelerate as the world struggles to respond to entrenched deprivation, violent conflicts and vulnerabilities to natural disasters. Extreme poverty is three times higher in rural areas than in urban areas. 2018 was the fourth warmest year on record. Levels of CO2 concentrations continued to increase in 2018. Natural environment is deteriorating at an alarming rate. Sea levels are rising. Ocean acidification is accelerating. Ocean acidity is 26% higher than in pre-industrial times. 1 million plant and animal species are at risk of extinction. Land degradation continues unchecked. Various methodologies have been evolved to monitor the progress of SDGs.

Defining Indicators

One of the major challenges for India is devising suitable indicators to effectively monitor the progress of SDGs. India's past records reveal that it has not been very successful in setting relevant indicators to measure outcomes. The definition for "safe" drinking water has been misconstrued with the availability of hand pumps and tube wells and the official data suggested that 86% of Indians had access to safe drinking water and therefore were "on track" for the MDG goal on drinking water . But the number of waterborne diseases and deaths due to diarrhea are quite high in India.

Monitoring and Ownership:

A third significant challenge in implementing SDGs would be with respect to ownership. Though NITI Aayog is expected to play the lead role in tracking the progress of SDGs, its members have expressed reservations on being able to take on this mammoth task. Given that

the data utilised in the construction of the IIAG come from 35 separate data providers that present their data on different scales, it is necessary to standardise all data. This is done through a statistical process called normalisation whereby raw data for each indicator are transformed by the min-max normalisation method. This process allows all scores to be published in common units and within the same bounds of 0-100, where 100 is always the best possible score.

Financing Sustainable Development Goals (SDGs)

The challenge of financing SDGs can be resolved to some extent by strengthening the existing academic infrastructure in the nation. India is a regional hub for higher education and boasts itself for being the home town of several renowned institutions such as IIT and IIM. These institutions have well developed infrastructure for research. These resources can be pooled and effectively utilised in designing, developing and measuring indicators meant for sustainable development.

In developing countries like India, there was some hesitation in reducing carbon emissions for two reasons, first their per capita emissions were lower, second, it would mean compromising with the development of the nation.[19] Therefore a carbon trading system was evolved among the countries of the world where firms were permitted to emit carbon within the prescribed limit and were assigned carbon credits for this purpose If any firm wants to exceed the limit it can buy the unused credit from another firm. In this way the buying firm is penalized for exceeding its carbon quota and the selling firm is rewarded for reducing its emissions. Governments can consider the idea of penalizing firms with higher carbon footprints by making them finance the sustainable goal programmes in the developing and least developed countries.

The responsibility of implementing Sustainable Development Goals (SDGs)

With NITI Ayog expressing its doubt as to how far it would succeed in this laborious task it is high time the Indian Government decentralizes this task and while doing so it must be borne in mind that SDGs aim at conserving and passing on the natural resources to the next generation. This cannot be done without involvement of the society. But a society so knowledgeable to use its natural resources in a perfectly ecologically sound manner is nearly impossibility. Changing social, political, cultural, technological and ecological conditions will exert new pressures on the natural resource base and the possibility of its misuse or overuse always remains . Therefore a political order in which decision making will be done by those who would suffer the consequences of those decisions would be ideal. A new system that would ensure participation from groups that are directly connected to the problem needs to be evolved.

PROGRESS AND ACHIEVEMENTS TOWARDS SUSTAINABLE DEVELOPMENT GOAL IN INDIA:

As per the Sustainable Development Goals Report, 2019 Extreme poverty has declined considerably. The under-5 mortality rate fell by 49 % between 2000 and 2017. Immunizations have saved millions of lives. The vast majority of the world's population now has access to electricity. Countries are taking concrete actions to protect our planet: marine protected areas have doubled since 2010. Countries are making concerted efforts to address illegal fishing. 186 parties have ratified the Paris Agreement on climate change, and almost all have communicated their first nationally determined contributions. About 150 countries have developed national policies to respond to the challenges of rapid urbanization, and more than 70 countries and the European Union now have more than 300 policies and instruments supporting sustainable consumption and production. A wide range of other actors international organizations, businesses, local authorities, the scientific community and civil society have engaged with the SDGs in a manner that generates great hope

India's composite score improved from 57 in 2018 to 60 in 2019-20 with major success in water and sanitation, power and industry. However, nutrition and gender equality continue to be problem areas for India, requiring a more focused approach from the government The ranks of 14 states have dropped in the index compared to 2018. All states and union territories except for Delhi have scored above 65. State/UT Wise Analysis States: Kerala has the top rank with a score of 70 followed by Himachal Pradesh with 69 points. Further, Andhra Pradesh, Tamil Nadu and Telangana shared the third spot with each state scoring 67 on the Index. Bihar has emerged as the worst performer with the lowest score of 50. Jharkhand, Arunachal Pradesh, Meghalaya and Uttar Pradesh are also some of the worst-performing states on the index. Uttar Pradesh has shown maximum improvement followed by Odisha and Sikkim. Union Territories: Chandigarh has topped the list with the score of 70 followed by Puducherry with 66.

Many of the Government's flagship programs such as Swachh Bharat, Make in India, Skill India, and Digital India are at the core of the SDGs. State and local governments play a pivotal role in many of these programs. State governments are paying keen attention to visioning, planning, budgeting, and developing implementation and monitoring systems for the SDGs.

CONCLUSION AND SUGGESTIONS:

To make the process of sustainable development feasible and operational, it is important to establish a common focus that can integrate the outlook and efforts of various participants in development, worldwide, realizing the diversity, in terms of geography, society, economics, level of science and technology capabilities and capacities and education standards/levels. Developed countries need to change their production and consumption patterns, including by limiting the use of fossil fuels and plastics, and to encourage public and private investments that align with the SDGs. Environmental commons—such as the atmosphere, rainforests and oceans— must be safeguarded as crucial sources of ecosystem services and natural resources. All stakeholders must work together to conserve, restore and sustainably use natural resources.

The food system must undergo widespread changes to the infrastructure, cultural and societal norms, and policies that are supporting the current, unsustainable, status quo. The much deeper, faster and more ambitious response is needed to unleash the social and economic transformation needed to achieve our 2030 goals. A far more optimistic future is still attainable only by drastically changing development policies, incentives and actions.

India is a country with the second largest population in the world. The steps taken by India for the achievement of SDGs matter a lot to the world. If India succeeds in attaining the SDGs it would mean a larger section of the world has achieved it. Therefore it is imperative for India to develop effective methods for implementing, monitoring and measuring the progress of SDGs. The biggest challenge for India seems to be the development of suitable indicators. This can be handled by developing an Indian Index for Sustainable Development (IISD) by taking the Ibrahim index as a base.

REFERENCES

1. Sustainable Development Goals Report 2019
2. SDG INDIA INDEX 2019
3. Devid,P et al. (1990)- Sustainable Development: Economics and Environment in the Third World, Edward Elgar.
4. Jhon, B. (1997)- Sustainability & Environmental Economics, Addision Wesley Longman.
5. Muldar, et al. (2001), Growth & Change: Evolutionary Economic Theories of Sustainable Development, vol, No.32 Iss 1,P.110
6. Pearce, Devid and et al., (1990) Sustainable Development Economics and Environment the Third World , Edward Elgar.
7. Goldin, Ian and L.Alan Winters,ed., (1995) The Economics of Sustainable Development Cambridge University Press.
8. Auty, R.M. (1997) – Approaches to Sustainable Development, Printer Publishers Ltd
9. James, H. et al. (1996) –Achieving Broad – Based Sustainable Development, Kumarian Press
10. Jhon, K. et al. (1995) Sustainable Development Earthsean
11. Pearce, Devid W. and Jeremy J. Warford, (1993), World Without End : Economics, Environment And Sustainable Development, Washington D. C. : Oxford University Press.
12. Ray, A. (1999), Mid-course Correction : Toward a Sustainable-Enterprises Model, Chelsa Green

ECONOMIC THOUGHTS OF DEEN DAYAL UPADHYAY

Dr. Asha Kumari
Assistant professor
Department of Economics
M.B.S.P.G. college, Gangapur
Varanasi, U.P.

Abstract

Deen Dayal Upadhyay wanted bhartiya mulya or values to be inculcated in people. Integral humanism of Hinduism knowledge can only solve the conflicts. Man is a part of nature and lives on the resources. Mutual behaviour of human beings and action reactions with nature is the integral humanism. West has created economic system which is run by constitutions methods, they are against laws of nature therefore, invite problems and calamities. It can be removed through integral humanism of Deendayal. He asserted that underdeveloped countries should not immediately adopt industrialisation but pursue agriculture then only their economic problems can be solved because it will lead to poverty and unemployment. If any country continuously and efficiently plans and nature is favourable then self-inefficiency in food grains can be achieved and it is necessary. Many times ignoring agriculture and promoting industries can prove to be disastrous. He was in favour of decentalisation. This paper analyses economic thought of Deendayal Upadhyay.

Key Words: Thought, Economic, Decentralization, ekatmaarthneeti

Introduction:

British rule destroyed the economy of India. When East India Company came to India contribution of India in world trade was 23 per cent but at the time when Britishers left India it was mere one per cent. Exports were almost negligible and famines were causing deaths. Food grains were being imported, old industries ruined and there was no environment for new industries, country was facing acute poverty. Deendayalji believed that Bharat should frame its own economic policies based on its situations, needs and resources and not follow America, Russia or Europe because they have differentcircumstancesand if we will follow them will land nowhere. If purchasing power of man increases through providing work to all and getting adequate remunerations on services and products then social and economic inequalities can be reduced. Production at the lowest level and increase in wages will itself imply employment to other. Therefore, Bhartiya Janshangh has put forward as aim of planning to provide guarantee for minimum standard of living, just distribution and full employment.

He said "Bhartiya Jansangh" wanted to use such new technologies so that in decentralised economy every family unit becomes productive unit. Large industries need huge capital and do not provide mass employment. Bharat needs to implement employment oriented plans. Productive plans should be planned in a manner so that it does not lead to concentration of economic power and economic inequalities can be removed. Common man's income can only be raised when everybody isemployed. Deendayalji said "While doing relevantand speedy industrialisation our priority should bethat how our country can become self sufficient in food grains. On the other hand we should pay attention to establishment of factories making products of common use and small industries." It is clear from the vision of Deendayalji that to feed the increasing population production of food grains should be within the country. In the manifesto of Jansangh he says "First priority should be given to agriculture sector so that country becomes self reliant in food grains and raw materials from agriculture".

He emphasized that if the purchasing power of cultivators increased they will buy products of industries thus, boosting industries also. An enriched cultivator's class will provide big market itself. Second plan failed badly in this context as it emphasized more on industries especially heavy industries. He was concerned that most of the population is dependent on agriculture sector whereas, its contribution is almost half which in today's case is even worse below twenty percent and services sector is growing at fast rate becoming number one contributor in national income. It's not a matter of pride as India is on the verge of becoming most populous country and contribution of agricultural sector is going on decreasing leading to vulnerable food prices and in future we may face food supply crisis if special attention is not given to the agricultural sector. We are trying to imitate Western Models of development which is unsustainable and selfdestructive

Deendayalji pointed out that by imitating Russia we started mechanization which has led many unemployed. . In addition Congress introduced cooperative farming which was opposed by Bhartiya Jansangh, thus, Congress had to with draw it.Deendayalji believed that for farmers agricultural land is like Mother and at no cost he will give up his land and with it production will fall not rise since they will not feel sense ofownership.

Agriculture Base of Indian Economy:

Agriculture should be the basis of development asmost of the population is depended on it. But from the beginning of planning agriculture was not given as much attention as industries. Bharat instead of strengthening its strength tried to first strengthen its weakness. It was not realised that strong rural sector will raise demand for industrial products and it can happen only when government works to raise the income of the people of the rural sector as maximum population reside there. Increasing their purchasing power should be the prime motive to boost economy. Agriculture sector also provides raw materials for the industrial sector thereby

affecting the supply of inputs by providing raw materials and labour supply and if this labour is educated and skilled, their marginal productivity will increase and they will boost the industrial production. If this sector is ignored considering demand and supply factors can lead to slow down of the economy and if demand is reduced to large extent can lead to problem of shutdown. Farmers should get profitable price for their produce then only their condition will improve, production will improve and country will become self reliant. Farming should be made profitable venture then only farmers will flourish while calculating minimum price apart from recovering cost of production some additional money should be added in the form of profit. Deendayalji believed that "Cow and Ox is the base of farming, therefore, we pay so much respect to cow. In Bharat since ages cow and its progeny's killing is prohibited. But present rule is exception to it. Apart from Bhartiya Jansangh normally all parties want to continue cow-killing. Thus, Jansangh has promised to prohibit cow and its progeny killing through bringing amendment in constitution."

Shortcomings of Plan:

After independence all sections of the society were facing financial problems both the governments and the households had deficit budgets. Both were pressing for their needs and trying to attain equilibrium by depending on the other who already is weak. Everyone is looking unto others to improve its position. For this strong foundation work needs to be done which Second Five Year Plan lacked on part of planners, economists and others responsible exhibited in signs of its failure within one year of its commencement. From conception to inception Second Plan was based on speculative estimates of possible resources with no relation to realities. Second Five Year Plan in this context failed miserably it totally concentrated on industrial development and basically heavy industries. In third plan this imbalance was promised to be corrected but Plan Expenditure on this head does not exhibit such rationality. Planning should consider the traditional values and fundamentals of any country's life and cultureandit'safactthatitbasicallyisexhibitedin ruralIndia.

Technology should be according to the social situations, in coherence with the Sanatan culture values and should improve our social institutions. Plans are means and not end. Plans should be formulated in accordance with objective evaluation of capacities of the country. Our social values, cultural traditions and physical needs are different from other countries therefore, we should adopt indigenous technology rather imitating west. Technology should be such that each household becomes independent production unit. Priority should be given to agriculture so that it sufficiently provides foodgrain and raw materials and becomes self reliant. Small industries and consumer goods industries should be established at large scale. Government should use its resources for proper development of railway, mineral oil, nuclear energy and should

concentrate on defence and related industries. Private entrepreneurs should establish industries in otherareas.

Ekatma arth neeti:

Both excess and scarcity of material leads to end of Dharma. Following western ideology man becomes addicted to the means to achieve wealth. Excess of wealth leads to as a means of sensual pleasure rather means of righteous conduct. The pleasures or utility derived from it has no end as one is fulfilled another arises as an endless process becoming limitless and he feels always to be in dearth of wealth and his addiction reduces his capacity to produce wealth and he adopts unfair means to take away somebody else's part as he becomes self and family centered rather any responsibility towards his fellow beings. When there is lack of material wealth then it ceases to be means and becomes end itself. For Dharma balance has to be maintained and limit to be set for acquiring wealth should adopt broader social perspective, sympathy towards fellow beings who do not possess wealth help them to fulfill basic needs and purity of means to acquire wealth is also necessary. The economic prosperity attained by west has led us to believe that whatever their thinkers say is eternal and those who realise that they are dependent upon certain system are not able to move out of its orbit. Faith on western system of production has increased because of their high economic growth and development. The education system that we are following is not creating capabilities to assess the usefulness and importance of principles that do not depend upon time, place or system which are useful to all. He admitted that our ideals of life and conditions of our economy are different therefore, our process and level of economic development should be different from that of West. Citizens should realise that they are given some rights so that they can perform their societal duties. As soldier is given weapon to protect nation, farmers possess land to cultivate, produce and feed the nation, teacher to increase the knowledge base of the society and communicate ideals to live a righteous living and likewise. Thus, no rights are eternal and they need to be modified from time to time according to the needs of the society. Righttoownershipisgiventouseparticularthingsbut within definite limit and purpose. The individual, the family, the community, the state are different forms in which society reflects and fulfills itself. In India the joint family system is a practical unit which preserves the social sense in individual. In it every individual earns but ownership is of the family and wealth acquired is used for the benefit of the family. He believed that this is the basis of Trusteeship.

He wanted that ownership rights should be given to workers in industries and share in management and profit as to share holders who has just invested in shares of

stock companies and gets part of profit and may exercise ownership rights while a worker who works so hard for the company is treated asstranger.

The reason to look towards west for solving economic problems is due to misnomer that Indian culture and religion being spiritual are indifferent towards problems of material life. In Bharat Dharma was defined as which leads to physical and metaphysical development. We look at the problems and means to solve them from spiritual viewpoint. Arth has been given importance alongwith Dharma. Religion is not static but dynamic and changes with time new thoughts emerge, keeping respect for the older ones. Reformers should give respect to our ancient tradition, our ancestors and achievements and may propound new thought to comply with the new age. This will maintain the linkage with our basic thoughts, will not harm nation and contribute to development. Western culture is materialistic, therefore, Arth is dominant. India should move forward coordinating between materialism and spiritualism. Arth which is necessary for survival and existence of people and also make efforts for attaining high values has been given place in programme of Jansangh. There are countries supporting and following America showing inclination towards capitalism and others supporting and following Russia showing inclination towards socialism. In India also conflict between socialism and capitalism is seen which is mere reflection of ideological conflict in the world, it is nonexistence in India. It is useless to raise the conflict of private and publicsector.Weshouldfocusongeneratingdutifulness in people as it is not the institution which is good or bad but individuals can make it good or evil. Every institution is started with healthy spirit and good intention to make the society prosperous but few bad people enter into it and destroys the very aim, essence and purpose of the institution. Man is not only "economic man" this is just myth. There is no man who does each activity with economic purpose. He may have in mind 'Arth' but it cannot be always motivator of activities If human behaviour is judged on the basis of principles of economics then will not find economic man instead existence of "Wholeman" Sampoorn manav. Capitalism is based on economic man and socialism on mass. In both concepts only aim of fulfilling economic needs was assumed and other wants were ignored. Both concepts ignored humanism.

Power whether it is political or economic, centralization ends freedom of individuals. Both capitalism and socialism focus on centralisation of power. In capitalism gradually economic power is centralised or monopolised in the hands of few due to end of competition. When economic power is handed over to government as in socialism then executive of state also do the samething. In both cases files are taking place of man, that is their files are more important than themselves. Life becomes mechanised and humanism declines. In both systems man is considered in quantitative terms rather

qualitative. Thus, values of mankind decline as those having quantitative values are given more importance than people with high ethical values. Development should be planned keeping in mind specialty and diversity of each individual. Capitalism and Socialism has made man part of the non living instrument of the system. Local artisans have become labourers in industries working for eight hours and thus a wall has been raised between work and life. There should not be gap between work and his actual life while designing means to earn Man has to be considered in totality flesh and bones having heart, mind and body all have their hunger. Otherwise working hours will have dehumanising effect which will have its impact in his rest, non workinghoursandagainhewillbebacktowork.Innutshell he is not living his life beautifully experiencing beauty in relations, arts, literature, hobbies, love, devotion maximum activities are centered on his work. In private sector and few public sector you are working like a horse consuming maximum time in work for five days and then given two days rest. But it has its hangover sometimes have to work in holidays also or work from home and have to specially take time out for loved ones and friends. Human bond thus loosens and it has socialimplication.

We should think about Humanism – Frame means resources and systems for production, distribution and consumption in society keeping in mind all aspects of human being. Technology should be used rationally not blindly taking up traditional scienctific methods nor adopt Western technology. Technology used should be such that it leads to development of humanism. Acceptance at local level should be taken what people want and need incorporating their views. Such as government should work for the welfare of tribals while formulating any plan and project discussing with them and maintaining the beauty of their culture, tradition and practices should try to improve and assist as they want and their need, not imposing at them. Life is not just about consumption but should also incorporate sacrifice, sacrificing own desires for society and country. Being content with what God has given though working for better. Man should control his greed. Society provides opportunity for development and happiness to which he is entitled and it is expected from individual to abide by the social discipline. There is unity but not uniformity. Hinduism has the capacity to sustain society though some distortions and flaws have arisen over the years then also we have ageless unchanging laws and changing provisions seen together. Western thought according to Deendalay Upadhyay sees things in compartmentalized manner considering different institutions as separate and non interacting entities. But Bhartiya darshan see different entities as they do not clash rather are complementary. Universal coexistence and world peace is the unique feature of India way oflife. Happiness and peace donot follow money and material comfort. Dharm Arth, Kama and Moksha guide human activities. We do not ignore body as it should be 'strong enough for the

attainment of Dharma but all acts should not be centered around body and its worldly desires. Kama involves satisfaction of natural desires. Dharma relates to all principles which bring about, harmony, peace and progress in the life of mankind. It incorpates rules, principles and ethical codes according to which different activities of Artha and Kama need to be carried out. This will lead to integrated and harmonious progress towards Moksha. A person who performs his duties without expectation of its fruits attains Moksha. Dharma is given the foremost importance and is considered fundamental principle in the attainment of civilised life. It helps him in separating and performing Kama which is not just pleasurable but also beneficial. Without Kama and Artha Dharma cannot perpetuate because if basic needs are not satisfied one will not understand Dharma his first need is to fulfill at least basic needs as there is saying "Bhookhe Pet Na Hot Bhajan Gopala". Likewise Artha is needed to carry forward Dharma. Thus, Dharma Artha, Kama are interrelated and mutually complementary. Excessive importance to the institution of state at the cost of culture, individuality and social attributes has led to influence of politics in all sections of the society. Society is self born which comprises individuals but not created by them. A person who is very good socially may not be good in personal life. Similarly a good individual may not be very contributive to the society. Thus, a group of good men may not think good of the society together whereas group of bad man may think good for the society. There is no conflict between an individual and institutions of society and if exhibited it's merely perversion and decadence. As is the case with the caste system in India it was not created for conflict but for harmonization in society according to division of labour but with the passage of time decadence and perversions occurred and it has led to conflicts. Those who believe in Western thought consider conflict as natural coherence, therefore, consider caste system as evil whereas BhartiyaDarshanconsiders no flaw in the institution of caste system but conflicts as a result of perversions

Conclusions:

He assumed such an economic system where there will not be scarcity or abundance of wealth by scarcity of wealth he meant effort to fight poverty and striving for survival. Excess of wealth he meant too much reliance on ownership of property. For healthy development of man society needs neither such poverty nor such influence of wealth is optimum. He was in favour of economic activities which satisfy basic needs and not in creation of new needs especially when they are for increasing consumption of the produce. In such economies desires are left to increase without restrain which will never give birth to mental satisfaction. This is called consumerism. It leads to unrest and finally crime increase. It is believed that for good life uncontrolled desires and lust should be limitlessly resolved. Hunger and greed is found everywhere. Man himself

becomes a thing to be sold, skills and human values are ignored and take backside. Techniques of sale take place of human values. This mental bankrupting lead to innumerous lust which is inhuman and undesirable if excessive greed for food, power, property or sex exists. So live pure and satisfied life.

References:

1. Kulkarni, Sharad Anant, 'Pandit Deen Dayal Upadhyay Vichhar-Ekatm Arth Neeti' Volume 4, Suruchi Prakashan, New Delhi.
2. Mishra, Shyam Kartik, ' deen Dayal Upadhyay Thoughts Revisited Contemporary India, Kunal Books.
3. Nene, V. V., 'Pandit Deendayal Upadhyay Ideology and Perception: Integral Humanism' Suruchi Prakashan, NewDelhi
4. Sharma, S. R., 'Life and Works of Pandit DeendayalUpadhyay' Books Enclave.
5. Sharma, Mahesh Chandra(ed) (2016), ' Deen Dayal Upadhyay Sampoorn Vangmay' Volume 10 Prabhat Prakashan, NewDelhi
6. Shastri, Vivasvan, 'Pandit Deendayal Upadhyay's Roadmap for India' Patridge, India
7. Singh, Sanjeet Sharma, Gagandeep and BawaJagmet, 'A Review Paper on Integral Humanism: Comparison of Deen Dayal Upadhyay and his Counterparts" in"Shiv Shakti International Journal of Multidisciplinary and academic Research' Vol.5,No.2,April 2016. https://www.researchgate.net
8. Upadyay, Deen Dayal , 'The Two Plans', Prabhat Prakshan, NewDelhi
9. Upadyay, Deen Dayal, 'Integral Humanism: An Analysis of Some Basic Elements" Prabhat Prakashan, NewDelhi.

Environment and women in Margaret Drabble and Anita Desai

Dr. Md. Muntazir Alam
Patna University, Patna
Email- muntaziralam073@gmail.com

Abstract

Environment in Literature often mirrors the growth of the central protagonist within a specific socio-cultural and geographic milieu. It is a heritage of one's past and is therefore a process that has developed over the centuries. The fact that people live and function in an environment, accept one and reject another environment, is beyond doubt a matter of great concern for literary artists. A writer's environment moves and mediates between imagination and perception, cognition and recollection, a matter "of eye and ear, both what they half create, and what perceive". The way we see things is affected by what we know or what we believe. It is with the device of imagination at its disposal that the writer refurbishes what nature offers and man creates. Therefore, the environment becomes a mediating point between imagination and perception, nature and culture. And it is in the hands of writers to see how environment plays a distinctive role in the making of a metaphoric shape and a form.

Key Words: Environment, Women Perspective, Novelist

I have tried to examine the constant shifts in women's perspective in relation to environment. For further exploration of the subject I have selected and analysed those particular novels which explicitly seem to make a point in relation to Environment and Women in Margaret Drabble and Anita Desai. Despite the fact that these two writes come from dissimilar cultures and environments, we have see that they reflect similar concerns and anxieties in their exploration of women's predicament in a modern society. We see Drabble and Desai are contemporaries: Desai was born in 1937 and Drabble in 1939. As novelists they have achieved a prominent place in fiction in English. Their novels are principally about women who establish a keen affinity with the environment and who are equally influenced by their past and share an ambivalent attitude towards it. The similarities between the two writers can best be expressed by the "Voyage out" theme. From their earlier novels in the 1960s to their most recent writing, their heroines have developed from self obsession to self realization through the community. In this study we have tried to justify that environment is the most important factor by which the "Voyage out" of the theme has been carried out.

This study explores the post- Woolfian phase of women's writing and a world where women are confronted with a world of different complexities and challenges, seeking self-fulfillment. In

spite of the difference of their cultural situation, then, what is common to the women, in Drabble and Desai is a prolonged struggle to redefine and reconstruct their personal identity. Drabble has a definite literary tradition to draw on. She has been deeply influenced by the English environment. She falls back on the literary history of her predecessors; she is culturally determined to a greater extent than Desai whose writing is far more subversive. As a Indian whose life has been coloured by her German mother, her Indian upbringing and British colonial heritage, Desai has a variety of traditions to draw from. And yer she is as much a part of all these traditions as she is outside them. She draws not only from the European tradition but is equally interested in Indian folk love and epics. She writes with a consciousness of Indian mythology; her women are conditioned by their cultural and familial past. Though these women look submissive, but they play a role of rebel. The movement from the garden to the city to the island and from there to the mountains and a final negotiated retreat to the garden forms a cyclical trajectory in her novels. The predicament of these women reveals that an alliance to the father is not inimical to the Indian scene. They are bound to their families and in her fiction Desai examines how some of her women have failed to strike a balance between the father's land and the house of their husbands. Everything was associated with a longing for an environment of choice. The ultimate result is a retreat from adult life to the state of warmth womb or breast in a feminine world. Desai herself admitted to an interviewer:

"I am interested in characters who are not average but have retreated or have been driven into .some extremity of despair and turn against or make a stand against the general current. It is easy to flow with the Current, it makes no demands, it costs no effort, but those who cannot follow it..... know what the demands are, what is costs to meet them"

As we examine the environment in The Waterfall and Cry, the peacock, we notice certain similarities between the two, Both have the impact of environment and so the natural imagery has been elucideated in their Novels.

The snow in The Waterfall and the storm in Cry, The peacock unleash a set of responses in the two protagonists. Their unsatisfied sexual longing is enunciated in their encounter with the external world. The falling of snow and the birth of a daughter along with the entry of James leads Jane Gray into a world by passion and brings her out of the enclosure of the house.

"She no longer sinks in a Sea of shadows, but is borne up on wings, exalted to the skies..... when she receives her beloved, woman is dwelt in, visited, as was the virgin by the Holy Ghost, as is the believer by the Host."

Maya, the central figure in Cry, The Peacock suffers from narcissistic despair. Her inability to satisfy herself in her husband's house and the obsessive longing for the father's house has disturbing implications. Unlike Jane Gray of The Waterfall she is unable to requite herself. It could also be suggested that if the act of writing saves Jane Gray from disaster it cannot do the same to Maya. She remains trapped in her own consciousness. Jane Gray lives to see her "Poems in Print'. but Maya's story ends in a tragedy, moreover, the conditions within which the two women long for love and recognition are specific to their cultures. Where Jane Gray can move outwards into the world of writing,

to a measure of equality, and independence which is the cultural right of the middle-class European woman, Maya seems caught within an inherited stereotype of the Indian woman as petted and beloved plaything. a gift from father to husband, a child-wife :

" ... My Childhood was excluded, which grew steadily more restricted, unnatural even, and in which. I lived as a toy princess in a toy world. But it was a pretty one."

It is a remarkable fact that Drabble has a degree in English literature and has got an established tradition of women's writing in English. Where as Desai has a fractured inheritance and she has been exposed to multiple cultures and influences. Her mother's German background and her own English education at school and college, an interest in European literatures, all combined with her life and experiences in India, has been crucial to the development of her fiction. Post-1947 environment influenced Desai which causes her novels depicting something of the transitional world in which Indian women have found themselves. Where shall we go this summer? Is an obvious example in which Sita imagines the island as a refuge in which she can halt the processes and passages of time; the only history that she is reconciled to, is that of her father's equivocal and distant past. In Clear Light of the Day, the woman's realization of herself within the community is finally achieved. Clear Light of the Day personalizes the social suppression of women in Aunt Mira. She is incomplete without a husband and has no alternative but to be a servant. In Fire on the Mountain, Desai explores her childhood visit to the land of Kasauli and *"Childhood being the country that exists in time, not space."* We can say that this novel is not simply " her story" the story of one woman struggling to cope with her dreams and fears. It is an attempt to give voice to that long muted silence which has been a hallmark of lndian womanhood under patriarchy. For not only do we hear the sad and quiet voice of Nanda Kaul but the cool and indifferent voice of girl child Raka, and the voice of Ila Das which is like "a cackle of an agitated parrot" serves as a connecting link with the spitting and crackling of the fire in the image of Kasauli. Desai addresses the nature of 'refusal' and a reflection of woman's dissatisfaction:

" .... By calling attention all times to whatever remains unsatisfied, repressed, new eccentric, incomprehensible, disturbing to the status quo." Journey to Ithnea is one of the finest novels in which India becomes a "Plilgrimage". The novel traces a itajectory of transformation and self fulfillment. It gives a distinet identity to the hungry spirit of Leila. As a spiritual mother and a Guru she not only charts out a new identity but also becomes an inspiration and a force to reckon with. A life without a meaning, a life bored with its increasing focus on materialism draws people like to the spirituality of the East. Despite having settled abroad, Desia's novels continue to revolve around India and Indians.

After examination, we find the Drabble's early novels were written in the context of the "Permissive" 1960s, the decade of the sexual revolution and the prelude to the latest phase of the feminist movement. Drabble's women in her early novels are anxious to break away from a monotonous, repressed and grey childhood which is mirrored in the age of the North of England. But in the later novels, beginning perhaps with **The Middle Ground (1980),** Drabble's women start to undertake their "Voyage out" as the heroic age of the

1960s recedes and they grow older and more mature, they not only become interested in wider social issues but insist that a faith in the community can lead to deeper self-realization. This change leads to greater tolerance and affection for provincial life and to reconciliation with both the aspects of modern industrial society and, as in **The Realms of Gold**, with the image of the midlands and the north of England. As her women become less slef-obsecessed and more concerned with the lives of others, so her environment settings reflect this outward movement, from the closed room of **The Waterfall** to the archaeological city of **The Realms of Gold**.

Thus we see these two writers represent two parallel environment of their respective cultures and times. The environment in relation to women makes it possible to consider the differences as significant derivaties. This in turn points to the socio-cultural structures within which women perform their specific roles. Above all, it locates a series of meaningful ensembles which characterize women's desire for individuation. The environment not only becomes a point of reference but asserts itself as a point of mediation which clearly distinguish the differences in their approach to fiction and the role of women that we wish to look into while reading their novels. Further I have used psychoanlysis method to find universalism I spite of two such culturally diverse writers like Drabble and Desai. But far from drawing any universalist claims in my paper I intend to use the theory only as a conducive mode of enlightenment. It is the environment in their fictional and non-fictional writings that provides a basic guideline to examine the constant shifts in women's perspective in relation to the environment. In their pursuit for self-recognition, women in Desai's and Drabble's novels reach an understanding that absolute freedom like absolute happiness is an illusion and can only be attained with a certian degree of inner eqilibrium. Living in an age of material consciousness the two writers reflect on the increassing decline in human relationships. Trust, faith and stablity together with tradition, security and a security and a sense of possibility Constitute their major concern. They seem to proclaim "life is what you make of it" but at the same time they also acknowledge the presence of social, political, individual and moral environment.

References-

1. Desai, Anita, Interview, by Yashodhara Dalmai, The Times of India 29 April, 1979;
2. Drabble, Margaret, The Waterfall, Harmondsworth : Penguin Books, (1969)
3. Deauvoir, Simon de, The Second Sex translated by H.M Parshley Harmondworth, Penguin Books (1949).
4. Desai, Anita; Cry, The Peacock, (1990) Delhi, Orient Paperbacks, (1963)
5. Desai, Anita, in Olinder, 1984
6. Kristeva, 1977